इन नाटकों को खेलने से पहले लेखक को रायल्टी भेजना आवश्यक है।

एमेचर क्लबों अथवा अन्य संस्थाओं से निवेदन है कि बिना लेखक को रायल्टी दिये इन में से कोई एकांकी न खेलें।

बिना लेखक अथवा प्रकाशक की अनुमति के इन में से कोई नाटक किसी संकलन में न दिया जाय।

विज्ञप्ति

'देवताओं की छाया में' का प्रथम संस्करण तेरह वर्ष पहले लाहौर से प्रकाशित हुआ था। छापने वाले एक ऐसे प्रकाशक थे जो केवल पाठ्य-क्रम के लिए पुस्तकें छापते थे। पुस्तक को छाप कर उन्होंने अपने गोदाम में डाल दिया और क्योंकि किसी एक नाटककार के एकांकियों को पाठ्य-क्रम में रखने की प्रथा पंजाब में न थी* और साधारण बिक्री वे करते न थे, इसलिए इस संग्रह का दूसरा संस्करण दस वर्ष तक न हो सका। एक कारण यह भी था कि अश्क जी निरन्तर नौकरी करते रहे और अपनी पुस्तकों के व्यवस्थित प्रकाशन की ओर ध्यान न दे सके।

*अब भी नहीं, यद्यपि 'गुड़ खाना और गुलगुलों से परहेज़ करना' की नीति के अनुसार उन्हीं चार-छः नाटककारों के एकांकी विभिन्न संग्रहों में संकलित कर, बिना उनको उचित रायल्टी दिये, पाठ्य-क्रम में रखे जा रहे हैं।

लेखक और प्रकाशक की इस उदासीनता के होते भी इस संग्रह के नाटक बड़े लोकप्रिय हुए। 'लक्ष्मी का स्वागत' और 'अधिकार का रक्षक' विभिन्न संग्रहों में संकलित हुए। न केवल ये दोनों वरन् 'जोंक' और 'आपस का समझौता' बार बार खेले गये। 'जोंक' और 'अधिकार का रक्षक' तो गत वर्ष इलाहाबाद ही में खेले गये। इनके रेडियो संस्करण भी आल इंडिया रेडियो के भिन्न भिन्न स्टेशनों से बार बार प्रसारित हुए।

इस लोक-प्रियता के बावजूद इस संग्रह का पुनः पुस्तक रूप में न प्रकाशित होना बड़ा अखरता था। हमें प्रसन्नता है कि हम इस अभाव को पूरा करने में सफल हुए। १९४९ में हमने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया।

अब तीन ही वर्ष बाद इसका तीसरा संस्करण पाठकों के समक्ष रखते हुए हमें और भी खुशी है। इस बीच में संग्रह के एकांकी दक्षिण भारत से काश्मीर तक खेले गये हैं और हमें आशा है कि ज्यों ज्यों देश का एमेचर रंगमंच स्फूर्तिशील होगा, संग्रह के एकांकियों की लोक-प्रियता बढ़ेगी।

प्रकाशक

क्रम

आमुख

अपने कहानी-संग्रह मानसरोवर के प्राक्कथन में कहानी और उसकी कला पर प्रकाश डालते हुए स्व० प्रेमचन्द ने लिखा :

"हमें यह स्वीकार कर लेने में संकोच न होना चाहिए कि उपन्यासों की भाँति आख्यायिका की कला भी हमने पच्छिम से ली है, कम से कम उसका आज का विस्तृत रूप तो पच्छिम ही की देन है।"

यदि यही बात मैं एकांकी के सम्बन्ध में भी कहूँ तो अनुचित न होगा। एकांकी लिखने की जो स्फूर्ति हमें इधर मिली है उस का कारण पश्चिम में एकांकी की उन्नति और साहित्य तथा रंगमंच पर उसका छा सा जाना ही है।

एक अंक का नाटक हिन्दी के लिए, कम से कम हिन्दी रंगमंच के लिए (यदि हिन्दी का कोई अपना रंगमंच है !), सर्वथा नयी

चीज है। यूरोप मे जब कई कारणों से रंगमंच अवनति की ओर जाने लगा और रंगशाला के मालिकों ने अनुभव किया कि पुराने नाटकों का युग बीत गया है तो उन्होंने प्राचीन शैली के नाटकों के स्थान पर नयी तर्ज के नाटक प्रचलित किये और स्टेज को लगभग मिट जाने से बचा लिया।

नया नाटक, जिस ने इस परिवर्तन-काल मे जन्म पाया, अपने दूसरे गुणों के अतिरिक्त, यह खूबी भी रखता था कि वह पुरानी शैली के नाटकों की अपेक्षा संक्षिप्त था। कहने का तात्पर्य यह कि यदि पुरानी शैली के नाटक चार-पॉच घंटों मे खेले जाते थे तो यह बड़ी सुगमता से डेढ़ दो घंटों मे ही समाप्त हो जाता था। इसलिए जब जनता इस अपेक्षाकृत छोटे नाटक के लिए तैयार हो गयी और उस ने इसे प्रशंसा की दृष्टि से देखा तो उस के लिए इस से भी संक्षिप्त अर्थात् बीस तीस मिनट या अधिक से अधिक एक घंटे मे समाप्त हो जाने वाले एकांकी के लिए तैयार हो जाना कुछ कठिन न था। आज स्थिति यह है कि एकांकी यूरोप के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैल गया है और नगर तो दूर, देहात की जनता तक इसमे दिलचस्पी ले रही है।

भारत के प्राचीन साहित्य में एकांकी

यद्यपि यूरोप मे एकांकी को जन्म लिये साठ सत्तर वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ और इस से पहले वहॉ के साहित्य मे इस का अस्तित्व भी न था, किन्तु इस का यह तात्पर्य्य नहीं कि उस से पहले एकांकी नाम की चीज ही संसार मे मौजूद न थी। भारत के स्वर्ण-युग मे, जहॉ कला के दूसरे अंगों का पूर्ण-विकास हुआ था, वहॉ एकांकी नाटक भी अपनी व्यापकता और विभिन्नता के साथ उपस्थित था। रंगमंच पर एकांकी नाटक खेले जाते थे और इन की अपनी निजी कला भी थी।

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रथ साहित्यदर्पण मे दृश्य-काव्य के दो भेद बताये गये है। इन मे 'भाण' और 'व्यायोग' एकाकी की ही प्रसिद्ध किस्में है। इसी ग्रंथ के पृष्ठ. २८१ तथा २८२ पर लिखा है।

भाणः स्याद् धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः।
एकाक एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः॥

और फिर

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रित॥
एकाकश्च भवेत्......

महाकवि भास का ऊरुभग और नीलकठ का कल्याण सौगंधिक प्रसिद्ध एकाकी है।

इस के अतिरिक्त उपरूपक के १८ भेदों मे भी, 'गोष्ठी', 'नाट्य-रासक', 'उल्लाप्य', 'काव्य' और 'अक' आदि, एकाकी-नाटक के विभिन्न रूप है। उस समय भारत का रगमच दर्शकों को खूब आकर्षित करता था, कालीदास और भास ऐसे नाटककार साहित्य की अभिवृद्धि मे रत थे, इसलिए बडे नाटक के साथ एकाकी ने भी यथेष्ट उन्नति की और उस समय के रगमच की आवश्यकताओं के अनुसार इसकी कला भी विकासशील रही। दुर्भाग्यवश अनेक कारणों से, जीवन की अन्य धाराओं की भाँति, साहित्य मे भी हमारी प्रगति रुक गयी और हम ने प्राचीन से जौ भर भी हटना निषिद्ध समझ लिया। इसलिए काव्य और कथा के साथ हम नाटक मे भी पश्चिम से पिछड गये। नहीं तो पुराने एकाकी नाटकों को आवश्यक सशोधन और परिवर्तन के साथ उन मे सूत्रधार के कथन से नाटक आरम्भ करने और बात बात पर श्लोक कहने, तथा ऐसे ही अन्य दोषों को निकाल कर और उन्हे मनोविज्ञान तथा यथार्थ-जीवन के निकट लाकर हम यूरोप

से बहुत पहले नाटक का पुनरुत्थान कर सकते थे। परन्तु हमारे यहाँ तो रंगमंच ही मृतप्राय हो गया, सिनेमा ने बड़े नाटकों को समाप्त कर दिया, फिर एकांकी बेचारे की तो बात ही क्या है? यूरोप ने जिस प्रकार समय के साथ रह कर नाटक को विस्मृति के गर्त में गुम होने से बचा लिया, वैसा भारत नहीं कर सका। और यही कारण है कि आज हिन्दी उर्दू दोनों में एकांकी नाटक एक नयी सी चीज दिखायी देता है।

प्राचीन और अर्वाचीन नाटक

इस से पहले कि मैं आधुनिक एकांकी के जन्म और उस की प्रगति के बारे में कुछ कहूँ, मैं यहाँ संस्कृत के प्राचीन नाटकों और आधुनिक नाटकों में जो भेद है, उन का संक्षिप्त में उल्लेख कर देना चाहता हूँ।

पहला भेद तो यह है कि जटिल नियमों से बद्ध होने पर भी प्राचीन संस्कृत नाटक में निर्देश बिलकुल छोटे अथवा नहीं के बराबर होते थे और आधुनिक नाटक यद्यपि बंधनमुक्त है, किन्तु उनमें नाटकीय संकेत प्राय. लम्बे और व्यापक होते हैं। रंगमंच की कला, कम से कम यूरोप में बड़ी विकसित हो गयी है। खुली हवा में किसी तरह के साज-सामान के बिना खेले जाने वाले नाटक से लेकर, घूमने वाले रंगमंच, बिजली तथा फुट-लाइट्स के समस्त प्रसाधनों की सहायता से नाटक खेले जाते हैं। यथार्थ को स्टेज पर सत्य कर दिखाने के प्रयास में बीसियों साधनों को उपयोग में लाया जाता है।

दूसरा भेद यह है कि 'नान्दी', 'मंगलाचरण,' 'प्रस्तावना', 'स्वगत' आदि जो प्राचीन नाटक के आवश्यक अंग थे, अर्वाचीन नाटक में देखने को भी नहीं मिलते। तीसरा यह कि उन में नायक, नायिका और कथानकों का बंधन भी नहीं और न ही वे सूत्रधार और नटी

द्वारा आरम्भ किये जाने की अपेक्षा रखते है। चौथा यह कि प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक एकाकी जीवन के अत्यधिक समीप है। उनके कथानक कल्पना पर अवलम्बित होने पर भी जीवन का उल्लंघन नहीं करते। जीवन ही सा उनका क्षेत्र भी विस्तृत है और वे राजा महाराजाओं को बेकार घड़ियों के लिए मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करने की अपेक्षा, जनता के मनोरंजन और ज्ञान-वर्धन का उद्देश्य पूरा करते है।

यूरोप में एकांकी का जन्म

यूरोप मे आज एक-अंक का नाटक अत्यधिक महत्व प्राप्त कर चुका है। परन्तु जैसा कि मैंने पहले कहा, साठ सत्तर वर्ष पहले वहाँ इसे कोई जानता भी न था। इंग्लिस्तान मे एकाकी का जन्म दिलचस्पी से खाली नहीं। पहले पहल न इसे गम्भीरता से लिया गया और न इसे कोई विशेष महत्व ही दिया गया। रात को देर से खाना खाने के स्वभाव के कारण, जैसा कि उस समय इंग्लिस्तान के लोगों का था, रंगमंच के मालिकों को किसी ऐसी चीज की जरूरत पड़ी, जिससे वे दर्शकों का उस समय तक मनोरंजन कर सकें, जब तक कि देर से खाना खाने वाले रंगशाला मे न पहुँच जायें। वास्तव मे थीएटर-हाल मे कुछ लोगों के देर से आने के कारण, एक तो नाटक के आरम्भ मे विघ्न पड़ जाता था और दूसरे पहले से बैठे हुए दर्शक अप्रसन्न हो जाते थे। इसी समस्या का हल करने के लिए *Curtain raiser* (पट-उन्नायक) का आविष्कार किया गया।

'पट-उन्नायक' एक छोटा सा एकाकी होता था जो पर्दा उठने से पहले खेला जाता था। पहले पहल यह घटिया प्रकार-का प्रहसन होता था, जिसका उद्देश्य मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और जीवन का

यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण न होकर, दर्शकों का मनोरंजन मात्र था। इसमें न नाटकीय-द्वन्द्व होता न उसका अन्तिम विन्दु! परन्तु १६०३ में लंदन के वेस्ट ऐंड थीयेटर में एक ऐसी घटना हुई जिसने इस प्रहसन को सस्ते, थोथे और घटिया श्रेणी के एकांकी के बदले एकदम साहित्य का एक महत्व पूर्ण अंग बना दिया।

उस वर्ष डब्लयू० डब्लयू० जेकब की एक कहानी "बन्दर का पंजा" एकांकी के रूप में 'पट-उन्नायक' के स्थान पर खेली गयी। किन्तु जब उसका पर्दा गिरा तो लोग इतने प्रभावित हुए कि जिस नाटक को देखने आये थे, उसे देखे बिना हाल से उठ गये।

एकांकी की प्रगति और उसका महत्व

इस एक ही घटना से एकांकी की सम्भावनाओं और उसके महत्व का पता चल जाता है। किन्तु उस समय रंगमच के सर्वेसर्वा घबरा गये और इस भय से कि लम्बे नाटकों की लोकप्रियता को धक्का न पहुँचे, उन्होंने इसे रंगमच से निर्वासित कर दिया। एकांकी के लिए यह अच्छा ही हुआ। व्यवसायिक रंगमच से निकल कर वह देश के विस्तृत रंगमच पर आया। नगर नगर रंगशालाएँ बनीं और जीवन की विभिन्न समस्याओं पर एकांकी नाटक खेले जाने लगे। बड़े भारी रंगमंच की, या पर्दों की, या फर्नीचर की, या बहुमूल्य पोशाकों या दूसरे कीमती सामान की एकांकी के लिए आवश्यकता न थी। किसी सम्राट, अमीर, नव्वाब, या किसी दूसरे ही ऐसे नायक के बिना भी काम चल सकता था और वे देहाती जो अधिक शिक्षित न थे, अपनी विविध समस्याओं के हल अपने सामने पाने लगे, अपनी कुरीतियों के परिणाम अपनी आँखों के सामने एकांकी की छोटी सी स्टेज पर देखने लगे। इस तरह यूरोप में एकांकी नाटक ने मनोरंजन के साथ साथ

सामाजिक सुधार और शिक्षा का काम भी किया और इस प्रकार साहित्य के एक कोने मे एक सुदृढ स्थान प्राप्त कर लिया। एक आलोचक ने उक्त घटना का उल्लेख इन शब्दों मे किया है '

"In that event nothing better could have happened to it, for if it proved to be a death blow to the curtain raiser, it resulted in the birth of the short play as a new, vivid and distinct form of Dramatic Art."

अर्थात्, "उस समय एकांकी नाटक के लिए इससे अच्छी कोई बात न हो सकती थी, क्योकि यदि एक ओर यह (बन्दर के पंजे की लोकप्रियता) पट-उन्नायक की मृत्यु का कारण बनी तो दूसरी ओर इसमे उस सक्षिप्त नाटक का जन्म हुआ जो कला का एक अभिनव, महत्त्वपूर्ण और प्रथक् अंग बना।"

भारत में एकांकी की लोकप्रियता

दुर्भाग्य से भारत मे रंगमंच का अभाव है, इसलिए एकांकी को जो उन्नति मिलनी चाहिए थी, वह उसे नहीं मिली। स्टेज की अनुपस्थिति मे भारत के कलाकार एकांकी के विभिन्न गुणों और लक्षणों को समझने मे अशक्त है और न ही वे इस कला के विभिन्न पहलुओं को जानते है। इसलिये अच्छे मौलिक एकांकी अभी तक अधिक संख्या मे दिखायी नही देते और अधिकांश अनूदित अथवा अपनाये हुए नाटक पत्र-पत्रिकाओं की शोभा बढाते है, किन्तु जिस तेजी से हिन्दुस्तानी भाषाओं मे ये अनुवाद हो रहे है, उससे कम से कम एक बात का पता चलता है कि भारतवासी एकांकी को पसंद करते हैं और यदि अच्छे मौलिक एकांकी देश की विभिन्न समस्याओं पर लिखे जायँ तथा देश के वास्तविक जीवन का प्रतिबिम्ब उनमे दिखायी दे, तो वह दिन दूर न रहेगा जब भारत

का मृत-प्राय रंगमंच फिर जीवन की अँगड़ाई लेकर जाग उठेगा और भारत की अपनी समस्याओं का हल करने मे वही लाभ पहुँचायगा जो यह इंग्लिस्तान, अमेरिका अथवा यूरोप मे पहुँचा रहा है।

इस समय दूसरी चीज़, जिसने एकांकी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, रेडियो है। यद्यपि इस देश मे रेडियो को जारी हुए अधिक समय नहीं हुआ, किन्तु रेडियाई नाटक को जितनी लोकप्रियता प्राप्त हुई है, कम से कम उससे इस बात का पता तो चल जाता है कि यदि स्टेज पर एकांकी नाटक खेले जाये तो वे कम लोकप्रिय न होंगे। कारण यह कि रेडियो की अपील मात्र कानों तक है, किन्तु रंग-मंच कानों के साथ आँखों को भी अपील करता है। दूसरे, जहाँ रेडियो मे हमे सारे के सारे अभिनय की कल्पना करनी होती है, वहाँ हम स्टेज पर इसे अपने सामने होता देखते हैं। फिर हाड-मास के अभिनेताओं को अपने सामने अभिनय करते देखने मे उनके स्वर ही को सुनने की अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द मिलता है।

यहीं एक दूसरा प्रश्न पैदा हो जाता है। वह यह कि जब हिन्दुस्तानी भाषा का अपना कोई रंगमंच ही नहीं तो रंगमंच के लिए एकांकी लिखने का मतलब ? 'हंस' मे "क्या एकांकी नाटक का साहित्य में कोई स्थान नहीं ?"* शीर्षक मेरे लेख के उत्तर मे श्री जैनेन्द्र ने भी ऐसी ही बात लिखी थी। इस सम्बन्ध मे तब भी अपने उत्तर मे मैंने यही विनय की थी (और अब भी मैं यही निवेदन करना चाहता हूँ) कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है—यह कथन अभी पुराना नहीं

*'हंस' मई १६३८

हुआ। यदि हम अनुभव करते हैं कि भारत मे रंगमच के पुनरुत्थान की आवश्यकता है, तो हमें उस समय तक हाथ पर हाथ धरे न बैठे रहना चाहिए, जब तक कोई महत्वाकांक्षी फिर से रंग-मच की व्यवस्था न करे।

वास्तव मे यदि स्थिति पर ठडे मन से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि एकांकी का तो गुण ही यही है कि इस के लिए किसी बड़े थिएटर-हाल अथवा रगमच की आवश्यकता नहीं। बहुत से एकाकी कालेजों, स्कूलों और विभिन्न संस्थाओं की स्टेजों पर भली-भाँति खेले जा सकते है और उन्हें जन-साधारण की शिक्षा-दीक्षा, समाज-सुधार और कला की अभिवृद्धि के लिए काम मे लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मेरा तो मत है कि रगमच से पहले नाटको की अधिक आवश्यकता है। इस से पहले कि रंगमंच अस्तित्व पाय, इस बात की जरूरत है कि भारत की परिस्थितियों के अनुसार समाज, राजनीति, आर्थिक-दशा तथा अन्य समस्याओं को छूने वाले एकाकी यथेष्ट सख्या मे लिखे जायँ। आज यदि कोई व्यक्ति एक स्थायी रगमच बना ले, अभिनेताओं का भी प्रबन्ध कर ले, तो एकदम वह किस प्रकार नाटक प्राप्त कर सकता है। उसके लिए उस स्थिति मे इसके अतिरिक्त और कोई चारा नही रह जाता कि वह पश्चिम के नाटकों का उल्था करके उन्हे स्टेज करे। आवश्यकता इस बात की है कि एक एक्ट के अच्छे नाटक लिखे जाय, खेले जाय और रगमंच द्वारा उन लोगों तक पहुँचाये जायँ जो अभी तक साहित्य तथा कला मे किसी प्रकार की दिलचस्पी नहीं लेते।

यद्यपि हिन्दी मे एकाकी को (जिन मे झाँकियाँ* भी शामिल

*झाँकियाँ प्राय एक दृश्य की होती हैं और प्रायः ये एक घटना अथवा विचार का संक्षिप्ततम चित्रण मात्र होती है जैसे प्रस्तुत सग्रह का एकांकी 'पहेली'।

है) जन्म लिये अभी कठिनाई से दस बारह वर्ष बीते हैं, इस पर भी उन्होंने इस बात का प्रमाण दे दिया है कि उन्हे हँसी में नहीं उड़ाया जा सकता। न केवल पाठ्य-पुस्तकों और रेडियो मे उन्होंने अपना स्थान बना लिया है, वरन् स्कूल और कालेजों के रंगमंच पर भी वे उत्तरोत्तर अधिक संख्या मे खेले जाने लगे है। प्रस्तुत संग्रह में भी 'लक्ष्मी का स्वागत', 'अधिकार का रक्षक' और 'जोंक' बार बार रंगमंच पर खेले गये है। 'जोंक' तथा 'अधिकार का रक्षक' अभी गत वर्ष प्रयाग-विश्वविद्यालय में खेले गये है।

एकांकी और इसकी कला पर इस संक्षिप्त से प्राक्कथन में विस्तार से कुछ नहीं लिखा जा सकता। परन्तु मैं इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि यदि आधुनिक युग के बड़े नाटकों की कोई अपनी कला है, तो एकांकी की भी है। यहाँ मैं एकांकी तथा साहित्य के दूसरे अंगों मे जो अन्तर है, उसे संक्षिप्त मे बताने का प्रयास करूँगा।

एकांकी और बड़े नाटक

आधुनिक युग के बड़े नाटकों और एकांकियों मे (जिन में झॉकियॉ भी सम्मिलित है) वही अन्तर है जो पुराने समय के पॉच पाच अंकों और बीस बीस दृश्यों के नाटकों और आधुनिक युग के तीन चार अंक के पूरे नाटकों मे है। यदि हम आधुनिक युग के नाटकों को पुराने नाटकों के संक्षिप्त संस्करण कह सकते है तो इन एकांकियों को भी आधुनिक नाटकों का संक्षिप्त संस्करण कहा जा सकता है। दोनों मे इतना ही अन्तर है जितना उपन्यास और कहानी मे। जिस प्रकार कई उच्च-कोटि के उपन्यासकार सफल कहानियॉ नहीं लिख सकते, इसी तरह कई नाटककार एकांकी और झॉकियॉ लिखने में कठिनाई अनुभव करते है। नाटक कला के ये

दोनों अंग (बड़े नाटक और एकांकी) एक दूसरे से पृथक् अपना अलग अलग अस्तित्व रखते है उसी प्रकार जैसे प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बनाने की कला और जीवित वस्तुओं के चित्र खींचने की कला, दोनों चित्रकला की दो विभिन्न शाखाएँ हैं और अपना अलग अलग अस्तित्व रखती है और एक मे निपुण होने का अर्थ दूसरी में निपुणता पाना नहीं।

नाटक की इन दोनों शाखाओं मे बड़ा अन्तर यह है कि उपन्यास की भाँति लम्बे नाटक मे नाटककार शब्द पर शब्द, वाक्य पर वाक्य और दृश्य पर दृश्य के प्रयोग से इच्छानुसार प्रभाव और वातावरण पैदा करने मे सफल हो जाता है। एकांकी में लेखक के पास घटना के विस्तार और पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए कोई अवसर नहीं होता। उसकी पार्श्वभूमि भी सीमित होती है। उसके पात्रों की झाँकी मात्र ही दर्शक देख सकते है। एकांकी मे समस्त परिस्थिति को एकदम अपने दर्शकों को समझाना नाटक-कार के लिए आवश्यक है। लम्बे सम्भाषणों के बदले संक्षिप्त पर अर्थ-पूर्ण सम्भाषणों से काम लेना पड़ता है। फिर जहाँ बड़ा नाटक वर्षों और सदियों तक को अपनी बाँहों से बाँध सकता है, एकांकीकार जीवन की किसी अनन्यमनस्क घडी ही का चित्रण कर सकता है। उस एक घड़ी मे उसे कथानक, पात्रों के चरित-चित्रण अथवा वातावरण को उपस्थित करना होता है।

एकांकी और कहानी

कुछ आलोचकों का विचार है कि एकांकी कहानी ही का रंगमंच पर खेला जाने वाला संस्करण है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने एक स्थान पर ऐसा लिखा भी है। किन्तु यद्यपि बहुत सी अंग्रेजी कहानियाँ सफलता के साथ एकांकी नाटकों मे परिवर्तित की गयी है, स्वयं मैं ने भी अपनी कहानियों के रेडियो रूपान्तर ब्राडकॉस्ट किये

है, परन्तु हरेक कहानी सरलता के साथ एकांकी में परिवर्तित नहीं की जा सकती। वास्तव में साहित्य के इन दो अंगों में उद्देश्य का अन्तर है। इस उद्देश्य के अन्तर से दोनों की कला में भिन्नता आ गयी है। कहानी का उद्देश्य पाठक के मनोरंजन और दृष्टिकोण को सामने रखना है और एकांकी का उद्देश्य दर्शक की दिलचस्पी तथा उसके मनोरंजन को। इसी लिए जहाँ कहानी में कई बार (जैसा कि दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक कहानियों में) घटना इतनी जरूरी नहीं होती, वहाँ नाटक में यह अत्यन्त आवश्यक होती है।

दूसरे, चूँकि प्रत्येक नाटक में प्रत्येक बात संभाषण के द्वारा ही दर्शकों तक पहुंचती है (नाटककार कहानी लेखक की भाँति स्वयं कुछ नहीं कह सकता) इसलिए आवश्यक है कि यह संभाषण जोरदार हो। कहानी-कार सब पात्रों का चित्रण अपनी ओर से कर सकता है, परन्तु नाटककार ऐसा नहीं कर सकता। जो कुछ उसे कहना होता है वह पात्रों के संभाषण अथवा अभिनय द्वारा ही कहता है। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि बहुत सी उत्तम मनोवैज्ञानिक कहानियाँ, जिन में लेखक किसी एक व्यक्ति के मानसिक भावों का विश्लेषण करता चला जाता है और जिन में कथानक अथवा एक्शन को इतना महत्व नहीं दिया जाता, सफलता के साथ रंगमंच पर नहीं दिखायी जा सकतीं। इसी प्रकार वे एकांकी, जिनका उद्देश्य किसी एक घटना को दिखाना मात्र होता है, अच्छी सफल कहानी में परिवर्तित नहीं किये जा सकते। कहानी भी तो आखिर किसी घटना का वर्णन-मात्र ही नहीं।

एकांकी और सम्भाषण

इसी प्रकार भूल से कुछ लोग एकांकी को संभाषण का भी नाम देते हैं। भाई चन्द्रगुप्त ने एक बार, बाजार में आमने सामने खड़े होकर संभाषण के रूप में विभिन्न वस्तुओं का विज्ञापन देने वाले

"चाचा-भतीजा" के संभाषण को व्यंग्य से एकाकी का ही दर्जा दिया था और कहा था कि एकांकी के दो गुण केवल 'दिलचस्पी' और 'अर्थपूर्ण वार्तालाप' है।❀

इस से अधिक भ्रमपूर्ण धारणा दूसरी नहीं हो सकती। जिस प्रकार कथानक, सभाषण, चरित्र-चित्रण, वातावरण, गठन, आदि कहानी के पृथक गुण है, किन्तु हम इन मे से किसी एक गुण को कहानी नहीं कह सकते, जिस प्रकार केवल पॉव या हाथ मनुष्य नहीं कहला सकते, उसी प्रकार हम मात्र सभाषण को, चाहे वह कितना भी दिलचस्प और अर्थपूर्ण क्यों न हो, नाटक का दर्जा नहीं दे सकते। नाटक के लिए, जैसा कि मैने कहा तन्मयता, अनन्यमनस्कता (*Concentration*) एक महत्वपूर्ण अग है। सभाषण एक साधन है जिस से दर्शकों को तन्मय रक्खा जाता है और कथानक मे अनन्यमनस्कता लायी जाती है। किन्तु तन्मय करने वाली चीज केवल सभाषण नहीं वल्कि वह घटना अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य है, जो सभाषण और अभिनय के द्वारा दर्शकों को दिखाया जाता है। अभिनय को रगमच पर खेले जाने वाले नाटक मे सब से बड़ा महत्व प्राप्त है। प्रायः लम्बे लम्बे भाषण वह प्रभाव उपस्थित नहीं कर सकते, जो एक छोटी सी भंगिमा, दबी घुटी सिसकी, अथवा स्वर की अद्रता कर सकती है। सफल नाटक का सब से बड़ा गुण यह है कि वह आरम्भ से अन्त तक दर्शकों को तन्मय रखे (यह बात अच्छे चुस्त संभाषण से भी हो सकती है।) और जब वे उठें तो यह अनुभव हो कि उनका समय और पैसा व्यर्थ बरबाद नहीं हुआ।) और यह बात केवल संभाषण से सम्भव नहीं)।

एक भ्रान्ति

एकाकी के सम्बन्ध मे जो इस प्रकार की भ्रांतियाँ उत्पन्न हो

❀ 'हस' मई १९३८

जाती है, उनका सब से बड़ा कारण यह है कि एक अक के नाटक विभिन्न उद्देश्यों को सामने रख कर लिखे जाते हैं। उनमे से कई ऐसे भी होते है, जिनका किसी स्टेज पर खेला जाना लेखक को वाञ्छित नहीं होता, वरन् लेखक यह चाहता है कि किसी कठिन समस्या को दिलचस्प सभाषण के रूप मे अपने पाठको के सामने उपस्थित कर दे।

प्राय पत्र-पत्रिकाओं मे जो सभाषण प्रकाशित होते है उन्हे भी गल्ती से लेखक अथवा सम्पादक नाटक का नाम दे देता है और पाठक भी, इस बात पर विचार किये बिना कि इस नाटक के लिखने मे लेखक का उद्देश्य उसका स्टेज पर खेला जाना भी था या नहीं, उसे नाटक ही समझ लेता है। रेडियाई नाटक भी जब प्रकाशित होते है तो उनमे अभिनय के मुकाबिले मे संभाषण के आधिक्य को देख कर पाठक सभाषण को ही नाटक समझने की भूल करते है, हालाकि स्टेज पर खेला जाने वाला एकाकी सर्वथा पृथक चीज है और जैसा कि मैंने ऊपर की पंक्तियों मे लिखा है, उसकी अपनी पृथक कला है।

प्रीत नगर
१४-१२-४०

उपेन्द्रनाथ अश्क

तीसरा सस्करण
प्रयाग
६-३-५३

देवताओं की छाया में

[दुखांत व्यंग्य]

पात्र

मरजाना

नूरी

बेगां

रज्जो

मरी

रहीम

सादिक

चौधरी, जलाल, ताफी आदि !

[उन्नति के इस युग में, जब नागरिकों के जीवन का-स्तर दिन-प्रति-दिन बढ रहा है और नगरों के तंग, गंदे, सीलदार मकानों में उनका दम घुटने लगा है, बड़े बड़े नगरों के इर्द-गिर्द मिलों तक नयी आबादियाँ बसती चली जा रही हैं, जिनमें से कई गाओं के समीप तक चली गयी हैं।

काकूके ऐसी ही एक नयी आबादी के पास दो अढाई सौ कच्चे घरों का एक गाँव है। एक व्यवसायी सोसाइटी ने, जो शिष्ट-व्यवसाय की कला में निपुण है, इसके पास तीन चार सौ एकड ऊसर धरती सस्ते दामों मोल लेली है और फिर इस अपील पर कि उस धरती पर एक नये समाज की नींव रखी जायगी, जो सम्प्रदाय के स्थान पर मानव को अपने प्रेम का भाजन बनायगा और देश के दीन-हीन कृषकों का सुधार करेगा, मँहगे दामों प्लाट बेच कर 'देव नगर' नाम से एक नयी बस्ती का सूत्रपात कर दिया है। निकटवर्ती-गाँवों के श्रमी वहाँ सुबह सात आठ बजे से शाम के सात आठ बजे तक सख्त सर्दी अथवा सख्त गर्मी में काम करते हैं और पांच छै आने दैनिक मजूरी पाते हैं और वे लोग पत्र-पत्रिकाओं में बड़े गर्व-स्फीत स्वर में घोषणा करते हैं कि उन्होंने लाखों रुपये देहात में वितरण कर दिये हैं। और उनके नगर के निकटवर्ती गाव सम्पन्न हो रहे हैं।

इसी काकूके के एक आंगन में पर्दा उठता है।

मरजाना बैठी ओखली में धान कूट रही है। ओखली धरती में गड़ी है और इसके इर्द-गिर्द धरती से जरा जरा ऊँची मिट्टी की तह जमा कर गोबरी* कर दी गयी है। मूसल की धमक से धान उछल उछल कर बाहर बिखर बिखर जाते हैं और वह उन्हें फिर समेट, ओखली में डाल कर कूटे जाती है।

> मरजाना सोलह सत्रह वर्ष की ग्रामीण युवती है। शरीर भरा पूठा है, रंग गोरा, लेकिन नासाफ़, बाल रूखे और उलझे दो दो चार चार लटें दोनों ओर कपोलों पर बिखरी हुई हैं। ओढ़नी के नाम पर पुरानी गर्म लोई का टुकड़ा सिर पर है, जो धान कूटते समय कंधों पर आ रहता है।

ओखली के दायीं ओर, मरजाना के पीछे, रसोई-घर है, जिसका चौखट-हीन दरवाजा कोने में है। सामने दो कोठिड़ियाँ हैं, जिनमें से एक का दरवाजा खुला है और एक का बंद। एक तीसरी कोठड़ी का दरवाजा रसोई-घर के बे-चौखट के दरवाजे में से दिखायी देता है। रसोई-घर की दीवार सात आठ फुट से कुछ ही ऊची है। इसमें एक झरोखा है जिसमें से धुआं निकल कर दीवार को सियाह कर चुका है। इसी झरोखे के नीचे खूँटी से छाज लटक रहा है।

बायीं ओर तथा रसोई-घर के इधर को दायीं ओर, कच्ची, रसोई-घर जितनी ही ऊची, चार दीवारी है।

आंगन में एक चारपाई पड़ी है, जिसके पाये और बाध बेहद घटिया किस्म का है। इसी चारपाई के पास बायीं ओर को कुछ हट कर, धरेक

*गोबर में मिट्टी डाल कर लीपना।

(वकायन) का एक नवयुवक पेड है, जो सर्द-हवा के झोंकों से कभी कभी ठिठुर उठता है।

मरजाना चुप चाप धान कूटती है। खाजन* का ढेर उसके पास लगा है। कार्तिक को बीते कुछ ही दिन गुजरे हैं। आकाश पर आज सारा दिन बादल रहे हैं और धूप अब निकली भी है तो श्वेत श्वेत सी, मुरझायी मुरझायी सी, यक्ष्मा से पीडिता की मुस्कान की भाँति पुर्की, कहीं पीलापन तक उसमें नहीं है।

सर्द-हवा का एक झोंका आता है और एक झुरझुरी सी लेकर तथा ओढनी को सिर पर करके वह तीव्र-गति से मूसल चलाने लगती है।

गली के दरवाजे से भागती पर ठिठुरती हुई नूरी आती है और धम से आकर मरजाना के सामने बैठ जाती है, मरजाना नहीं बोलती, सिर नीचा किये चुपचाप धान कूटे जाती है।]

नूरी मरजी, मरजी !

(मरजाना चुप मूसल चलाये जाती है।)

(प्यार से) मरजानी !

(मरजाना चुप)

नोट (रंगशाला के निर्देशक के लिए) रसोई-घर दर्शकों की दायीं ओर रंगमंच के आधे पिछले हिस्से की ओर है, रसोई-घर के इधर की ओर, आंगन की दायीं दीवार के साथ कुछ पौधे लगे हुए हैं। मरजाना इस तरह बैठी है कि रसोई-घर उसके पीछे और सामने की कोठड़ियाँ उसके दायीं ओर को हैं, वकायन का पेड और गली का दरवाजा सामने है। गली का दरवाजा काफ़ी इधर को है।

*कूटे हुए धान को पंजाब में खाजन कहते हैं।

—: (चिढ़ कर शरारत से) हैं मर-जानी* !

मरजाना : (सिर उठाकर और झटके से बालों की लटों को पीछे करके) मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है नूरी कि गाली न दिया करो !

(फिर मूसल चलाती है।)

नूरी : ओहो, बड़े मिजाज तेज हैं मेरी बीबी के, आज रहमे से झगड़ा हो गया होगा न......

मरजाना : (कूटना छोड़कर) मैं कहती हूँ तुम बाज न आओगी !

(मुख लाल हो जाता है।)

नूरी : और मैं पूछती हूँ बदर की बला तबेले के सिर क्यों ? भाई रहीम रूठ गये होंगे तो मान जायेंगे। कब तक रूठेंगे ? आखिर पड़ना तो उन्हें एक दिन तुम्हारे ही पाँवों पर है ना, आज मँगेतर हैं तो कल...

मरजाना : (मूसल उठाकर) तू पिटे बिना न मानेगी।

[नूरी उठकर भागती है, मरजाना मूसल उठाकर उसके पीछे भागती है। दोनों चारपाई के इर्द-गिर्द चक्कर काटती हैं, बकायन का पेड़ धीरे धीरे हिलता है। बेगां तीसरी कोठरी से, रसोई-घर के दरवाज़े में से होती हुई, निकलती है। खूटी से छाज उठाती है।]

बेगां : अरी यह क्या धमाचौकड़ी मचा रखी है। यह धान कूटे जा रहे हैं या धरती !

[ओखली के पास बैठकर खाँजन फटकने के लिए छाज में भरती है।]

: शर्म नहीं आती तुम्हें।

*मर-जानी पंजाबी की आम घरेलू गाली है, मरने योग्य।

[नूरी धम से आकर उसके पास बैठ जाती है। तनिक लज्जित-सी होकर मरजाना भी आ बैठती है, मूसल चलाने लगती है। बेगां धान फटकती है।]

: इतनी बड़ी हो गयी है, अभी बच्चों की तरह भाग दौड़ कर रही है, तुम्हारे जितनी लड़कियाँ तो दो दो बच्चों की माएँ हैं। (हाथ से भूसी चावलों से अलग करती हुई) और क्यों री नूरी, कोई काम नहीं तुझे ?

नूरी : मैं तो चाची, भरी के पति की बात सुनाने आयी थी कि यह मेरे पीछे पड़ गयी।

मरजाना : (कूटना छोड़कर) गाली नहीं दी तूने ?

नूरी : मैंने गाली दी, अल्लाह कसम मैंने तो प्यार से मरजानी कह कर बुलाया था।

मरजाना : (क्रोध से) मर...जानी !

बेगां : (फटकना छोड़ कर) क्या हुआ भरी के शौहर* को।

नूरी : मैंने 'मर-जानी' कब कहा, रूठी बैठी है किसी से और लड़ती है किसी से, आ लेने दे भाई रहीम को....

[शरारत से मरजाना की ओर देखती है, मरजाना आग्नेय दृष्टि से एक बार उसकी ओर देख कर फिर जल्दी जल्दी धान कूटने लगती है।]

बेगां : (उत्सुकता से) भरी के खाविंद* की क्या बात थी !

नूरी : कल टकुआ लेकर अपनी सास के घर जा पहुँचा। रज्जी लाहौर गयी हुई थी। घर में उसकी बहन और उसकी लड़की थी। वह भरी को ज़बरदस्ती उठाने लगा। बहन ने रोका तो पिल पड़ा उस

*पति। †फरसा

पर कहने लगा मैं कत्ल कर दूँगा सब को। उसने हाय-तौबा मचायी तो लोग इकट्ठे हो गये।

[रज्जी क्षत-विक्षत, परेशान और सजल आँखें लिये प्रवेश करती है]

रज्जी : (आते आते) सुनी मरजी की अम्मा तूने इस लड़के की बात? मैं तो अभी आयी लाहौर से, पता चला कि रान कत्ल करने चढ़ दौड़ा। (बैठकर आँसू पोंछते हुए आर्द्र-कण्ठ से) मेरी बहन तक पर हाथ उठाया उसने। मैं तो अब पंचायत में फैसला करवा कर के रहूँगी।

बेगा : मैंने अभी नूरी से सुना, पर वह तो गया हुआ था।

रज्जी : गया था जहन्नुम* में। जब से इधर बसें चलीं और दूध शहर जाने लगा और गाये भैंसों का मोल चढ़ गया तो अपने जानवर बेच कर सपूत ने खा-उड़ा डाले। फिर कर्ज लेकर यहाँ हलवाई की दुकान खोली। जो बनाता था वह अपने यार-दोस्तों को खिला देता था कि वे हमें तंग करें। छै रुपया निगोड़ा साल का किराया, वह तो दुकान से निकाल न सका, और क्या तीर मार लेता? फिर फेरा लगाने लगा, पर फेरा लगाना क्या आसान है! जवानों की मौत मरना है ऊसर में खोंचा उठाये गाँव गाँव फिरना, पैसा पैसा करके दाम बटोरना। उसे छोड़, ताँगा चलाने लगा। फिर सुना था फौज में भरती होने चला गया है। मैंने सुख की साँस ली थी। कल फिर कहीं आसमान से आ टपका।

[धीरे धीरे सिसकने लगती है। बेगां एक दो चार धान फटकती है। मरजाना चुपचाप अपने विचारों में मग्न धान कूटे जाती है।]

रज्जी : (आँसू पोंछ कर) करने को काम की क्या कमी है? अपनी खेती-बाड़ी तो खैर गयी भाड़ में। खेत ही मेरे कमाऊ ने गिरवी रख दिये।

*नरक

पर पास नगर बस रहा है। खुदा ने घर बैठे रोजी दी है। दूसरे लड़के भी मजूरी करते हैं। लेकिन मजूरी को तो वह अपनी हतक* समझता है (फिर गला भर आता है) आप बेकार फिरता है और गुस्सा निकालता है मेरी गरीब बेटी पर।

(गला साफ करती है और दुपट्टे से आँसू पोंछती है।)

बेगा : (पटकना छोड़ कर) हाँ और कुछ नहीं तो पाँच छै आने रोज़ तो कमा कर ला ही सकता है।

रज्जी : कमा कर क्या लायगा खाक। उसे तो उन की नकल की पड़ी हुई है। 'मैं इसे पर्दा न करने दूँगा,' 'मैं इसे सैर करने ले जाया करूँगा,' 'यह कुछ पढ़ती नहीं'—कोई पूछे तूने आठ जमातें पढ़ के कौन सी कलक्टरी कर ली है? दो एक बार लाहौर गया, वहाँ से खुशबूदार साबुन, तेल और न जाने क्या क्या फ़िजूल की चीजें ले आया। जो दस बीस बीघे ज़मीन थी, इन्हीं लच्छनों के मुँह गिरवी रख दी, ढोर डंगर तक ठिकाने लगा दिये, भरी की 'टूम्बे'‡ तक बेच बाच कर खा डालीं। और इस पर दम वही है कि मैं टोकरी न उठाऊँगा? भला बीबी बताओ हम उन अमीरों की बराबरी कर सकते हैं?

बेगा : अल्लाह अल्लाह करो!

(सहानुभूति से भरी लम्बी साँस खींचती है।)

रज्जी : मैं तो किसी को मुँह दिखाने की नहीं रही मरजी की अम्मा! सब से बैर मोल लेकर तो मैंने यहाँ नाता किया। भरी के ताऊ अपने लड़के के लिए कितना जोर दे रहे थे? पर ननद पीछे पड़ी थी इस अपने कपूत के लिए! और फिर अल्लाह जानता है जो मैंने एक

*अपमान ‡गहने।

पैसा भी लिया हो। सोचती थी, सब यही कहेंगे कि रांड लड़की का दाम लेकर मौज उड़ा रही है।

[बेगां फिर खाँजन पटकने लगती है। मरजाना चुपचाप धान कूटे जा रही है। जैसे उसे भरी की इस अम्मा की दुख-गाथा से कोई दिलचस्पी न हो, अथवा वह अपने ही किसी दुख मे निमग्न हो]

रज्जी · (पूर्ववत् आर्द्र-कंठ से) मैं तो कुछ नहीं चाहती भाई (हाथ से हवा को चीरती है) वह चोरी करे, यारी करे, दुकान डाले, तांगा चलाये, बस हमें खुलासी दे।

[उठकर पोधों में गला साफ करने जाती है फिर आ कर बैठ जाती है]

नूरी : फूफी, अगर वह ले जाना चाहता है तो तुम क्यों नहीं भेज देतीं भरी को उस के साथ ?

रज्जी : न बीबी अब नहीं। दो बार भेज चुकी हूँ। वह उसे बेतरह पीटता है। उस की परदादी तक ने जो बातें नहीं कीं, वे सब उसे करने को कहता है। नहीं करती तो गँड़ासा और टकुआ दिखाता है। भरी को तुम जानती हो, सारा गाँव उस की गवाही देगा। उस बेजावान का क्या है? जैसे धरती को पीट लिया, वैसे उसे पीट लिया! जमीन जायदाद खुद गिरवी रख दी, जो दो गहने थे, खा उड़ा डाले। अब गुस्सा उस पर उतारता है। भरी के ताऊ उस दिन ननद के घर गये, यह सुन कर कि भरी को पीटा जा रहा है। बस उन्हें देख कर तो सादिक को खून चढ गया। कहने लगा मैं इसे यहीं कत्ल कर दूँगा। तब उस भलेमानुस ने कहा कि बेटा तू कत्ल क्यों करेगा,

| चारा कतरने वाला अस्त्र जिसकी एक ही चोट से गर्दन तक काटी जा सकती है।

मैं ही इसे साथ ले जाता हूँ और अभी दस दिन नहीं हुए इस बात को कि टकुआ लेकर चढ दौड़ा (धीरे धीरे सिसकती है, फिर रोते रोते) न भाई मैं नहीं भेजती (फिर आँसू पोंछकर) बखशो बी बिल्ली, चूहा लंडोरा ही भला! भाड़ पड़े सोना जो कान खाय। मै तो बीबी, पहले ही दुखों की मारी हूँ। मरी दो वर्ष की थी जब उसके अब्बा अल्लाह को प्यारे हो गये। तब से जाने किस तरह मेहनत-मजूरी करके इसे पाला। सुनती थी लड़का अच्छे मिजाज का नहीं, लोगों से लड़ झगड़ आता है, पर ननद ने कहा—लोगों से कोई लाख लड़े अपने घर से तो सब बना कर रखते हैं। (सहसा गला भरकर) न भाई, मैं तो अब कुछ नहीं चाहती, बस उसे खुलासी दे दे।

[आँखों से आँसू पोंछती है। ठंडी हवा का एक झोंका आता है। धरेक का विटप झुरझुरी सी लेता है।]

बेगां : सूखी ठंड पड़ रही है (झुरझुरी लेकर) हड्डियों में घुसी जा रही है। नूरी बेटी जरा रसोई-घर से अंगीठी में कोयला तो डाल ला। हाथ सन्न हो रहे हैं।

(नूरी उठकर जाती है।)

: और तू मरजाना कोई कपड़ा ही ले ले, यह पाला तो......

[फिर झुरझुरी लेती है। मरजाना उत्तर नहीं देती। ओखली से कूटे हुए धान निकाल कर बाहर कर देती है, पास पड़ी टोकरी से और डाल लेती है और फिर मूसल उठा लेती है।]

रज्जी : मैं तो मरजी की अम्मा, परसों ही आ जाती, पर ठंडी सड़क पर एक इमारत गिर पड़ी।

बेगां : इमारत गिर पड़ी !

रज्जी : हाँ, ठंडी सड़क के ऐन ऊपर, किसी कम्पनी का दफ्तर बन रहा था, तीन मंजिला, ठेकेदार ने मसाला हल्का लगाया या न जाने

क्या हुआ, बस तीसरी मंजिल की छत आ पड़ी। बीस एक मजदूर नीचे आ गये।

(मरजाना अचानक कूटना छोड़ देती है और सुनने लगती है)

बेगां : बीस मजदूर नीचे आ गये! अल्लाह रहम करे। कोई मरा तो नहीं?

रज्जी : मेरे भाई का लड़का भी काम करता था, वह तो बच गया सिर्फ एक बाजू ही टूटा, लेकिन कई बेचारे दब गये (तनिक काँपकर) दो बेचारे तो पहचाने भी न जाते थे। लिलटन (लिंटल) की छत थी। लोहे की खपचियाँ उनके आर पार हो गयीं। हड्डियाँ निकल आयीं। हे मेरे अल्लाह......

मरजाना : (अचानक भर्राई हुई आवाज़ में) अम्मा!

(उसके स्वर की चिन्ता और आर्द्रता से सभी चौंक पड़ती हैं।)

बेगां : क्या बात है?

मरजाना : रहीम को अब काम पर न जाने देना!

बेगां : क्यों बेटी?

मरजाना : मैं जो कहती हूँ!

(स्वर और भी आर्द्र है।)

बेगां : पर क्यों?

मरजाना : इस नगर में भी तो इतने ऊँचे ऊँचे मकान बनते हैं और रहीम भी कुछ ऐसा ही नाम लिया करता है, निलटन या लिटन या क्या, जिसकी छत पड़ती है।

बेगां : अल्लाह सब का रखवाला है बेटी!

मरजाना : वह तो है पर मां कौन जाने (सिहर कर) कोई पांच छै आने रोज़ाना के लिए जान तो नहीं गँवा लेता।

रज्जी : वच्ची जिस की आ जाय उसे कौन बचा सकता है और जिस की बनी है उसे कौन मिटा सकता है। उन बेचारों की तो आ लगी थी, नहीं हजारों मकान बनते हैं, कोई सब थोड़े ही गिर पड़ते हैं। और फिर एक तांगे वाला वहाँ तांगा खड़ा करके आराम कर रहा था, वह मर गया, एक साइकिल वाला मर गया। वे कोई मजदूर थे ?

[मरजाना फिर मूसल की चोट लगाती है, पर मन उस का उद्विग्न है, एक चोट नहीं लगाती की मूसल रख देती है।]

मरजाना . पर माँ और भी तो काम हैं वहा—सड़कें बनाना, मिट्टी उठाना, पानी लाना, सफाई करना वह उनमें से कोई क्यों नहीं कर लेता। ये 'लिंटन' के मकान..... रहीम आज आ जाय, मै तो उसे न जाने दूँगी।

नूरी : (शरारत से) अभी से इतना हक्क जमाने ....

[परन्तु ज्यों ही वह मरजाना की ओर देखती है, उसकी आँखों की करुणा जैसा उस का गला दबा लेती है और शेष शब्द उसके मन ही में रह जाते हैं।]

बेगां : (आकाश की ओर देखकर) शाम हो चली है, अभी रहीम आ जायगा तो रोक लेना।

नूरी : (खड़ी होकर अंगड़ाई लेती है) यह कैसा सेंदूर सा चारों ओर फैल गया है और वह देखो पच्छिम के आसमान* पर बादलों का कैसा नगर सा बस गया है। जाने इनकी छतें भी 'लिंटन' की होंगी।

[दोनों बूढ़ियाँ हँसती हैं, किन्तु मरजाना इस हँसी में योग नहीं देती, वह बराबर धान कूटे जाती है।]

नूरी : लिंटन की छतें ....

*आकाश

[स्वयं अपनी बात पर हँसने लगती है। तभी बाहर कुछ शोर मच उठता है और बगूले की भांति भरी प्रवेश करती है]

रज्जी : (घबरा कर) क्या बात है, क्या बात है ?

भरी : मकान की छत आ रही है।

रज्जी : (चेहरे का रंग उड़ जाता है) किस मकान की ?

भरी : वह जो देव नगर में तीन मंजिल का बन रहा था।

(मूसल छोड़ कर मरजाना दरवाजे की ओर भागती है।)

बेगां : (उठ कर उसके पीछे भागती हुई) मरजी, मरजी !

मरजाना : मै जाऊँगी।

बेगां · पागल हो गयी है, जवान लड़कियाँ इस तरह कहीं बाहर जा सकती हैं ? मोमिन के घर में......

मरजाना : माँ..... !

(ओढ़नी से मुँह ढांप कर ऊँचे ऊँचे रोने लगती है।)

बेगां : (उसके पास जाकर उसके कंधे को थपथपाती हुई) दीवानी न बन ! अल्लाह सब का रखवाला है, चल बैठ मैं देखती हूँ।

[गली के दरवाजे में जा खड़ी होती है, रज्जी भी उठकर उन के पास चली जाती है, नूरी भी वहीं चली जाती है। मरजाना चुप चाप जाकर ओखली के पास लगभग गिर पड़ती है। सिर्फ भरी घरेक का सहारा लिये मौन खड़ी है। बाहर शोर प्रतिक्षण बढ़ता जाता है।]

बेगां : (बाहर गली में किसी भागते व्यक्ति से) चौधरी ..सुनो तो...चौधरी

(चौधरी हाँपता, हाँपता सा दरवाजे में आ खड़ा होता है।)

चौधरी : गजब हो गया मरजी की अम्मा, वह जो सब से बड़ी कोठी थी न किसी रायसाहब की...तीन मंजिलों की...जो इधर की ओर सड़क पर बन रही थी....उसकी लिंटल की छत आ रही है।

रज्जी और बेगां (दोनों) : लिंटल की !

मरजाना : (आकुल होकर उठती है) माँ !

बेगां : (मुड़ कर) मरजी !

[आवाज़ चीख की हद को पहुँची हुई है जिसमें क्रोध भी है और चिन्ता भी]

: बैठ तू वहाँ। मैं जाकर देखती हूँ। खबरदार जो दरवाजे के बाहर पाँव रखा।

(दोनों बाहर जाती हैं।)

नूरी : ठहरो फूफी मैं भी आयी।

बेगां : तू मरजी के पास बैठ।

नूरी : उसके पास भरी बैठी है।

[निकल जाती है। किवाड़ बन्द हो जाते हैं और बाहर से सांकल लगाने की आवाज़ आती है।

मरजाना फिर धम से बैठ जाती है और ओढ़नी से मुँह-ढाँप कर रोने लगती है। कुछ क्षण तक मौन छाया रहता है जिसमें धरेक का पेड़ काँपता है और हवा के झोंकों से अंगीठी पर पड़ी हुई राख उड़ती है। भरी धीरे धीरे मरजाना के पास आती है।]

भरी : मरजी।

[मरजाना नहीं बोलती न मुँह से ओढ़नी हटाती है। हवा का तेज झोंका आता है, वह काँपती है।]

: मरजाना यहाँ ठंड है, अन्दर चलो।

(मरजाना नहीं हिलती)

: तो फिर अंगीठी में कोयले डाल दूँ।

[रसोई-घर से एक बर्तन में कोयले लाकर अंगीठी में डाल देती है। मरजाना चुप बैठी रहती है।]

. अन्दर से लिहाफ लाकर डाल दूँ। यहाँ बहुत सर्दी है।

[जाने लगती है। मरजाना उसका हाथ पकड़ लेती है, और ओढ़नी हटाकर विगलित-दृष्टि से उसकी ओर देखती है। भरी उसे आलिंगन में कस लेती है।]

: हौसला करो। खुदा पर भरोसा रखो। अल्लाह सब ठीक ही करेगा। तुम तो योंही डर गयी हो। अभी भाई रहीम हँसते खेलते आ जायेंगे।

मरजाना : वह जरूर....

(ऊँचे ऊँचे सिसक उठती है।)

भरी : (उसके कंधे को थपथपाते हुए) मरजाना, मरजी।

मरजाना : (भरे गले से) मुझे बुरे बुरे ख्याल आ रहे हैं, मेरी आँख फड़क रही है।

भरी : अल्लाह रहम करेगा।

मरजाना : जरूर कुछ बुरी बात होगी।

भरी . (उसके कंधे को प्यार से थपथपाते हुए) हौसला करो... अल्लाह.....

मरजाना . (ओढ़नी चेहरे से हटा कर आँसू पोंछते हुए) तुम नहीं जानती भरी, आज सुबह मैंने उसे जाते समय नाराज कर दिया था। वह मुझे छेड़ने लगा और मैंने उसका हाथ झटक दिया और वह रूठ गया।

(फिर मुंह ढाँप लेती है ।)

भरी . हम लड़कियाँ हैं, हम अपनी इच्छा से हँस नहीं सकतीं, बोल नहीं सकतीं, हिलजुल नहीं सकतीं । चाहे जी में घुट घुट कर मर जायँ ! मुझे ही देख लो । माँ चाहती है कि यहाँ से खुलासी* हो तो ताऊ के लड़के के घर बैठा दे और उसकी निसबत † मुझे सादिक ही मजूर है ।

मरजाना : (आँसू पोंछ कर) पर वह तो तुम्हें मारता है ।

भरी : मारता तो है, पर मै मार खा लेती हूँ ।

मरजाना : तो फिर तू आयी क्यों ?

भरी : मैं कब आती थी । ताऊ को देख कर उसके सिर पर तो खून सवार हो गया, वह गँडासा उठा लाया और ताऊ मुझे ले आये ।

मरजाना : तो अब चली जा !

भरी : यही तो दुख है, जाऊँ कहाँ ? वहाँ तो खाने को सूखी रोटी भी नहीं । कल जब टकुआ ले कर चढ आया तो मैंने कहा मुझे ले जाना चाहता है तो चार पैसे तो कमा कर ला । सिर्फ मारेगा ही या खाने को भी देगा । कहने लगा—कोशिश तो करता हूँ, कुछ न बने तो क्या करूं ? मैंने कहा तो फिर मुझे ले जाकर क्या करेगा ? सारी दुनिया मजूरी करती है, तू क्यों नहीं करता । पेट तो खाने को माँगेगा । मार से वह न भरेगा । सच कहती हूँ मरजाना, इस पर वह बोला नहीं चुप चाप चला गया । असल में आठ जमातें पढ कर टोकरी ढोते उसे शर्म आती है । बाप मर गया और सिखाया किसी ने कुछ है नहीं।

मरजाना : तुम्हारी अम्मा तो कह रही थीं कि उसने तुम पर भी टकुआ चलाया ।

*मुक्ति †अपेक्षा

भरी : टकुआ चलाता तो मैं यहाँ बैठी रहती। वह तो यौंही मौसी ने शोर मचा दिया।

[दोनों कुछ क्षण आग सेंकती । मरजाना फिर उद्विग्न हो उठती है।]

मरजाना : मेरे दिल पर सुबह ही से भारी बोझ है भरी! जाते जाते कहने लगा भरजी, यदि मैं आज ही मर जाऊं तो फिर!

(सहसा फिर आंखें छलछला आती हैं।)

भरी : (उसके कंधे पर प्यार से हाथ फेर कर) तुम तो पागल हो, अल्लाह रहम करेगा।

मरजाना : मुझे उसी समय से न जाने कैसे कैसे ख्याल आ रहे हैं। दिल धक धक कर रहा है, और जी जैसे सुबह ही से रोने रोने को हो रहा है। आज रहीम खैर आफियत से आ जाय तो पीर गुलाब शाह की कब्र पर सवा रुपया चढ़ाऊँ।

[दरवाजा खुलता है। आगे आगे चौधरी फिर अचेत से रहीम को उठाये दो आदमी, फिर बेगां और फिर उसके पीछे अन्य व्यक्ति प्रवेश करते हैं। मरजाना घबरा कर रहीम की ओर बढ़ती है।]

बेगां : अन्दर जाओ, देखती नहीं हो, गैर आदमी आ रहे हैं।

[दोनों लड़कियाँ भाग कर रसोई-घर में चली जाती हैं। एक व्यक्ति आंगन में पड़ी चारपाई ठीक करता है। बेगां भाग कर अन्दर से पुरानी सी दुलाई लाने जाती है।]

मरजाना . (जब बेगां, अन्दर से दुलाई लाकर गुजरती है) अम्मा!

बेगां : (चारपाई पर दुलाई बिछाती हुई) घबराओ नहीं। अल्लाह ने बचा लिया है। सिर्फ भारी चोटें आयी हैं।

[दुलाई बिछा देती है। अचेतप्राय रहीम को उसपर लिटा दिया जाता है। चौधरी उसके हाथ पाँव आदि ठीक तरह रखता है और बेगां से कहता है :]

चौधरी : मरजी की मा। अन्दर से लिहाफ लेकर इस पर डाल दे, सर्दी कड़ी है।

(बेगां कोठड़ी में जाती है।)

चौधरी : (मुड़कर भीड़ में देखते हुए) अरे कोई मुख्तार दीनदार को बुलाने गया है या नहीं।

एक व्यक्ति : ताफी डाक्टर को बुलाने गया है।

चौधरी : अरे डाक्टर क्या खाकर मुख्तार का मुकाबला करेगा। मुख्तार टूटी हड्डियों की किरचों तक को जोड़ दे। जा भाग कर बुला ला उसे।

(वह व्यक्ति भाग जाता है)

चौधरी : (भीड़ में देख कर) और फिर वहाँ जाने कितने जख्मी पड़े हैं। डाक्टर किस किस को देखेगा।

बेगां : (रहीम पर झुकते हुए) रहीम, बेटा रहीम!

चौधरी : तुम उसे आराम से पड़ा रहने दो बीवी। जाकर मीठे तेल का प्रबंध करो, आग जला दो, पानी गर्म कर दो, शायद डाक्टर ही आ जाय। (मुड़ कर) अरे यार कोई भाग कर कुछ गर्म गर्म दूध तो लाओ! इसे कुछ होश तो आय। (एक युवक से) अरे जलाल जा तो जरा भाग कर गूजरों के यहाँ!

(जलाल भाग कर जाता है)

३

रहीम : (कराह कर) चाची······मरजानी !

बेगा : बेटा !

चौधरी . मैं कहता हूँ मरजी की अम्मा, तुम मीठा तेज़ लाओ, मुख्तार अभी आ रहा होगा। इस अँगीठी में और कोयले डाल कर इसे यहाँ रख दो ! रसोई-घर में आग जरा तेज़ कर दो ! जरूरत ही पड़ जाती कुछ चीज़ गर्म करने की।

(बेगां अँगीठी उठाकर जाती है)

-- : (दीर्घ निश्वास छोड़ कर) कुछ मकान गिरा है, सारी की सारी छत आ रही। यह ठेकेदार सब हराम की कमाई खाते हैं। पीर गुलाब शाह की खानकाह को बने, जाने सौ साल से ज्यादा गये हैं, पर मजाल है जो एक ईंट भी हिली हो। यहाँ चीज बनती पीछे है, मुरम्मत पहले शुरू हो जाती है। जाने कितने आदमी दब गये ? (सहसा मुड़ कर) क्यों भाई बाकियों का क्या हाल है ?

दो व्यक्ति : (जो रहीम को उठाये लाये थे) हमें क्या मालूम। हम तो इसे उठा कर ले आये। अभी तो मलबा हटाया जा रहा था। सादिक़ और मगू भी तो थे ?

चौधरी . कौन सादिक ? लोहार !

वे दोनों . नहीं, रजी का दामाद !

चौधरी लेकिन वह······

वे दोनो आज ही काम पर गया था।

[दरवाजा खुलता है। कुछ और आदमी हाँफते हुए प्रवेश करते हैं]

चौधरी क्यों?

एक आगंतुक : सादिक मर गया ।

[रसोई-घर में से किसी के धड़ाम से गिरने की आवाज़ आती है । साथ ही मरजाना चीख़ती है ।]

मरजाना : भरी को गश आ गया है अम्मा !

चौधरी : अरे कोई भाग कर कुछ दूध ले आओ ।

(जलाल दाख़िल होता है ।]

जलाल : गूजर कहते हैं दूध कहाँ है, दूध तो सब देवनगर चला जाता है बच्चों तक के लिए नहीं रहता ।

दिसम्बर ४०

जोंक

एक प्रहसन

पात्र

भोलानाथ

प्रोफेसर आनन्द

बनवारीलाल

कमला

एक पंजाबी, एक हिन्दुस्तानी, एक मारवाड़ी,

तथा अन्य लोग

पहला दृश्य

स्थान

भोलानाथ के निवास-स्थान का एक कमरा

[कमरा बहुत बड़ा नहीं और न बहुत खुला है।

कमरे में दो चारपाइयाँ भी बिछी हैं और दो कुर्सियाँ तथा एक छोटी-सी मेज भी रखी है। इसलिए इसे आप शयन-गृह भी कह सकते हैं और ड्राइंग रूम भी।

शेष सामान वही है जो एक साधारण क्लर्क या पत्रकार या ऐसी ही स्थिति के किसी व्यक्ति के यहाँ हो सकता है।

पर्दा उठने पर हम प्रोफेसर आनन्द को मेज के पास रखी कुर्सी पर बैठे एक समाचार-पत्र के पन्ने उलटते देखते हैं।

प्रो० आनन्द शक्ल सूरत में प्रोफेसर मालूम होते हों सो बात नहीं। शिक्षा जब से बढ़ी और हिन्दुस्तानियों के भोजन की मात्रा जब से घटी है, तब से कॉलेजों में ऐसे छात्र आने लगे हैं जिनको उनकी माताएँ आसानी से आधा टिकट लेकर अपने पास जनाने डिब्बे में बैठा सकती हैं।

प्रोफेसर आनन्द कदाचित छात्रावस्था में ऐसी ही किस्म के छात्र थे। अभी अभी एम० ए० करके वे पढाने लगे हैं, इसलिए उनकी अवस्था में कुछ विशेष अन्तर नहीं आया। उन्हें कोई भी मैट्रिक का छात्र समझ सकता है और इस समय तो वे प्रोफेसर की वेश-भूषा में भी नहीं है। एक तहबन्द और कमीज पहने शायद हजामत बना कर बैठे हैं, क्योंकि साबुन की सफेदी उनके चेहरे पर लगी दिखायी देती है और मेज पर पड़ा हजामत का खुला सामान भी इसी बात की गवाही देता है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद भोलानाथ दायीं ओर के कमरे मे प्रवेश करता है, जिधर कदाचित रसोई-घर है।

शक्ल-सूरत से भोलानाथ प्रोफेसर साहब से कुछ मोटा-ताजा है, पर चेहरे से जो बुद्धिमत्ता प्रोफेसर साहब के टपकती है, उसका वहाँ सर्वथा अभाव है सीधा-सादा सनकी-सा आदमी है, कंधे झाड़ने की आदत है। ऐसे आदमियों को लोग कभी-कभी जनमुरादी अथवा पत्नी-व्रत भी कह दिया करते हैं। आकृति से उसके घबराहट टपक रही है।

आनन्द पूर्ववत् समाचार-पत्र में निमग्न है]

भोलानाथ : (परेशानी के स्वर में) यह फिर आ गया आनन्द ! तुम मेरी सहायता करो परमात्मा के लिए !

आनन्द . (समाचार पत्र रख कर) कौन आ गया ?

(भोलानाथ परेशान सा चारपाई मे धंस जाता है।)

भोलानाथ यह एक बार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता।

आनन्द . कुछ पता भी चले, कौन है यह ?

भोलानाथ अरे कौन क्या ? राहों का आदमी है।

आनन्द : राहों का तो यों कहो कि तुम्हारे वतनी* हैं।

* वतनी=एक ही गाँव या नगर के रहने वाले।

भोलानाथ : अब वतनी को तो हजारों लोग मेरे वतनी हैं और कमरे (कंधे झाड़ कर) मेरे पास केवल यही दो हैं।

आनन्द : (आश्चर्य से) तो क्या इनसे जान-पहचान नहीं।

(उठ कर कमरे में घूमता है।)

भोलानाथ : बस, इस बात का चोर हूँ कि अपने छोटे भाई से इनके कारनामे सुनता रहा हूँ और ....

आनन्द : (रुक कर) पर तुमने कहा न कि फिर आ गया, तो इसका मतलब यह है कि ये साहब पहले भी तुम्हें अतिथि-सत्कार का सौभाग्य प्रदान कर चुके हैं।

भोलानाथ : (हँस कर) क्या बताऊँ, तनिक बैठो तो विस्तार से कुछ कहूँ !

(आनन्द चारपाई पर बैठना चाहते हैं।)

भोलानाथ : यहाँ क्या बैठते हो, वह कुर्सी ले लो।

(कुर्सी घसीटता है।)

आनन्द : मैं यहीं अच्छा हूँ, तुम कहो ?

भोलानाथ : (फिर तनिक सा हँस कर) बात यह है कि वह मेरा छोटा भाई है न परसराम, जैसा वह आवारा है, वैसे ही उसके दोस्त हैं। उसका एक मित्र है सोम या मोम या क्या जाने क्या ! यह जब भी आता था, अपने इसी भाई की बड़ी प्रशंसा करता था।

आनन्द : देशभक्त हैं ?

भोलानाथ : खाक !

आनन्द : कवि ?

भोलानाथ : इसकी सात पुश्तों में किसी ने कविता का नाम नहीं सुना !

आनन्द : तो वक्ता, डाक्टर, हकीम, वैद्य..... ?

भोलानाथ : (चिढ़ कर) तुम सुनते तो हो नहीं और ले उड़ते हो, वे थे न प्रसिद्ध अभिनेता मास्टर रहमत ! यह उनके साथ रह चुका है ।

आनन्द : (ठहाका लगाकर) तो ये एक्टर हैं !

भोलानाथ : (कंधे झाड़ कर) अब यह तो मुझे मालूम नहीं कि इसने मास्टर रहमत के प्रसिद्ध नाटक "खून का बदला खून" और "दर्दे जिगर" में कोई अभिनय किया है या नहीं, पर सुना था कि यह उनका दायाँ हाथ है ।

आनन्द : इस बात से तुम्हें क्या दिलचस्पी थी ?

भोलानाथ : (खिन्न हँसी के साथ) अरे बचपन था और क्या । जब हम मैट्रिक में पढ़ते थे तो उनके नाटक पढ़ने का बहुत शौक था और यद्यपि उन्हें देखने का अवसर प्राप्त न हुआ था ।.....

आनन्द : "खून का बदला खून" और 'दर्दे जिगर !'

(व्यंग्य से हँसते ।)

भोलानाथ : अरे भाई उन दिनों हमारे लिए तो वे कालीदास और शेक्सपियर से कम न थे । उन के नाटक पढ़ कर और मुहल्ले के एक रसीली आवाज वाले लड़के से उनके गाने सुन कर हम उनकी कला का रसास्वादन कर लिया करते थे ।

आनन्द : (हँस कर) और उनके अज्ञात-प्रशंसकों में थे ?

भोलानाथ : तुम तो जानते हो कि प्रसिद्ध लेखकों, नेताओं और अभिनेताओं को लोग साधारण आदमियों से कुछ ऊँचा ही समझते हैं,

और उनसे तो दूर रहा, उनके साथ रहने वालों तक से बात कर के फूले नहीं समाते। फिर यह तो मास्टर रहमत का दायाँ हाथ था...

आनन्द : ('अब समाप्त भी करो यह भूमिका' के से स्वर में) तो इनसे तुम्हारी भेंट हुई ?

(फिर उठ कर घूमने लगते हैं।)

भोलानाथ : भेंट ! तुम इसे भेंट कह सकते हो। हमारे नगर के हैं ना डॉक्टर किशोर......

आनन्द : (रुक कर) नगर नहीं, कस्बा कहो राहों कस्बा है।

भोलानाथ · (चिढ़ कर) अरे हाँ हाँ, तो मैंने इन्हें डॉक्टर किशोरीलाल की दुकान पर बैठे देखा, इसकी बातें दिलचस्पी से सुनीं और शायद एक दो बातों का उत्तर भी दिया था, बस......

आनन्द : फिर तुम इन्हें घर ले आये ?

भोलानाथ : (और भी चिढ़ कर) अरे कहाँ, तुम बात भी करने दोगे। इस बात को तो दस वर्ष बीत गये, इसके बाद तो यह गत-वर्ष मिला और तुम भली भाँति जानते हो कि गत वर्ष मैं किस मुसीबत से दिन काट रहा था। चंगड़-मुहल्ले का वह पीपल-वेहड़ा और उसमें वह लाला ज्वालादास का नारकीय मकान और उसकी अँधेरी कोठड़ियाँ, जिनमें न कोई रोशनदान था और न खिड़की और गर्मियों में बाहर गली में सोना पड़ता था।

आनन्द : (ऊब कर) पर बात तो तुम इनसे मिलने की कर रहे थे ?

भोलानाथ : हाँ, उन्हीं दिनों जब मैं दिन-भर नौकरी की खोज में घूमता था, यह एक दिन 'पीपल-वेहड़ा' के पास ही चगड-मुहल्ले में मिल गया और दूर ही से 'नमस्कार' किया। मै जल्दी में तो था, पर क्षण भर के लिए रुक गया।

आनन्द : तो कहने का मतलब यह......

भोलानाथ : (अपनी बात जारी रखते हुए) इस ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और कहा कि डॉक्टर किशोरीलाल आपकी बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। आप मुझे पहचान तो गये हैं ? मैंने कहा हाँ हाँ मास्टर रहमत........कहने लगे बीमार है बेचारा दर्द-गुर्दा से !

आनन्द : दर्द जिगर से नहीं ?

(हँसते हैं।)

भोलानाथ : (व्यंग्य की ओर ध्यान न देकर) मैंने खेद प्रकट किया और पूछा कि सुनाइए कैसे आये ? कहने लगा मुझे भी दर्द-गुर्दा की शिकायत है !

आनन्द : (ठहाका लगा कर) वह किसी ने कहा है न कि एक ही जाति के पक्षी एक ही साथ उड़ते हैं।

भोलानाथ : मैंने और भी शोक प्रकट किया। कहने लगा कर्नल माथुर को दिखाने आया हूँ। कल चला जाऊँगा। मैंने कहा तो आइए कुछ पानी-वानी पीजिए। कहने लगा—लाला बिहारीलाल प्रतीक्षा तो करते होंगे, पर चलिए अपने वतनी का अनुरोध कैसे टाला जा सकता है !

आनन्द : (ठहाका लगाते हैं) बिहारीलाल कौन थे ?

भोलानाथ : (जल कर) जाने कोई थे भी या नहीं। मेरे तो पाँव तले से धरती निकल गयी ! बड़े ही जरूरी काम से जा रहा था और मैंने तो योंही शिष्टाचार-वश पानी के लिए पूछा था। खैर ले आया और पेशबन्दी के तौर पर मैंने पत्नी से केवल ठंडे पानी का गिलास लाने के लिए कहा। पानी लेकर ये महाराय वहीं गली में बिछी हुई चारपाई पर लेट गये। मुझे जल्दी जाना था मैंने सकुचाते-सकुचाते

कहा मुझे......अ.....जरा जल्दी है, आप किधर जा रहे हैं? लेकिन इन्होंने बात काट कर और टाँगें फैलाते हुए कहा हाँ-हाँ आप शौक से हो आइए, मैं थक गया हूँ, यहाँ जरा आराम करूंगा।......

आनन्द : (हँस कर) खूब !

भोलानाथ : (कंधे झाड़कर) तुम होते तो मेरी सूरत देखते। नयी-नयी शादी हुई थी और ये हमारे वतनी...

(आनन्द फिर ठहाका लगाते हैं।)

भोलानाथ : मरता क्या न करता। मुझे तो जल्दी थी, हार कर चला गया। वापस आया तो ये मजे से बिस्तरा बिछवा कर सो रहे थे और पत्नी बेचारी अन्दर गर्मी में तप रही थी। पहुँचा तो कहने लगी आपका इतना घनिष्ट मित्र तो मैंने देखा नहीं। आपके जाने के बाद कहने लगा तुम तो शायद 'नवाँ शहर' की हो। मैं चुप रही तो बोला फिर तो हमारी बहन हुई।

आनन्द : बहन !

भोलानाथ : अब कमला मुझसे पूछने लगी कि ये हैं कौन? मैं क्या बताता? इतना कह कर चुप हो रहा कि हमारे वतनी हैं। चारपाइयाँ हमारे पास केवल दो थीं। आखिर वह गरीब सख्त-गर्मी में भी अन्दर फर्श पर सोयी। ख्याल था कि दूसरे दिन चले जायँगे, लेकिन पूरे सात दिन रहे और जब गये तो मैंने कसम खाकर कमला से कहा कि अब कभी नहीं आयेंगे। लेकिन यह फिर आ धमका है और कमला....

(कमला प्रवेश करती है।)

कमला : मैं पूछती हूँ, आप चुपचाप इधर आकर बैठ गये हैं और वे मुझे इस तरह आदेश दे रहे हैं जैसे मैं उनकी कोई मोल ली हुई चोंटी हूँ 'कमला पानी लादो,' 'कमला हाथ धुला दो,' 'कमला यह कर दो, कमला वह कर दो,' ये हैं कौन? आप तो कहते थे, मैं इन्हें जानता तक नहीं, फिर ये क्यों इधर मुँह उठाये चले आते हैं? इन्हें कोई और ठौर ठिकाना नहीं?

भोलानाथ . (घबराकर और कन्धे झाड़ कर) अब बताओ .

(उठ कर खड़ा हो जाता है।)

आनन्द : तुम ठहरो भाभी, मुझे सोचने दो।

(उठकर माथे पर हाथ रखे सोचते हुए घूमते ।)

कमला : आप सोच कर करेंगे-क्या? ये कोई इनके पुराने यार होंगे, मुझे इस बात से तो चिढ़ है कि आखिर ये मुझसे छिपाते-क्यों हैं? क्या मैं इनके मित्रों को घर से निकाल देती हूँ?

(चारपाई के किनारे बैठ जाती है।)

आनन्द . देखो भाभी . .

कमला . मैं कुछ नहीं देखती आप देखिए! आपसे हमारा कोई पर्दा नहीं। हमारे पास कमरे दो हैं और फ़ालतू बिस्तर एक भी नहीं, फिर आप भी यहीं हैं। इनके ये वतनी तो बिस्तर बिछा कर सो रहेंगे और मैं पड़ी ठिठुरा करूँगी बाहर बरामदे में।

आनन्द · देखो भाभी, ये इनके मित्र नहीं, यह मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ।

कमला तो फिर ये उन्हें साफ जवाब क्यों नहीं देते?

आनन्द . यदि इनसे यह हो सकता तब न?

भोलानाथ : (जो इस बीच में इधर-उधर घूमता रहा है, एक कर और कंधे झाड़ कर) हाँ अब वतनी आदमी है . .

कमला : वतनी है तो . . .

आनन्द : देखो झगड़ने से कुछ न बनेगा । इस आदमी को धता बताना चाहिए ।

कमला . यही तो मैं कहती हूँ !

आनन्द : यह इनसे हो चुका । इन अतिथि महोदय की खबर तो किसी दूसरी तरह ली जायगी ।

[कुछ क्षण मौन- जिसमें आनन्द सोचते हैं और भोलानाथ अंगड़ाई लेता है, फिर

आनन्द : (धीमे स्वर में) मै पूछता हूँ वह कर क्या रहा है ?

कमला : शायद बाहर गया है ।

आनन्द : (जैसे तरकीब सूझ गयी है चुटकी बजाकर) मै कहता हूँ भाभी तुम लिहाफ ले लो और चुपचाप लेट जाओ और यदि कराह सको तो कुछ-कुछ समय के बाद कराहती भी जाओ (भोलानाथ से) देखो भाई, तुम कह देना कि मुझे भूख नहीं । मैं बहाना कर दूँगा कि जी भारी होने से मैं उपवास से हूँ और बस. . . .

(सीढ़ियों से पाँवों की चाप आती है ।)

आनन्द : (मुड़ कर) मै कहता हूँ जल्दी करो । (एक-एक शब्द पर जोर देकर) ज . ल.. दी करो, इन्हीं कपड़ों समेत लेट जाओ ?

(हाथ में दो लौकियाँ लिये बनवारीलाल प्रवेश करता है ।)

भोलानाथ : आइए, आइए ! किधर चले गये थे आप ? ये हैं मेरे मित्र श्री० आनन्द, जालधर में प्रोफेसर हैं, यहाँ प्रिंसिपल गिरधारीलाल से मिलने आये हैं और (बनवारीलाल की ओर संकेत करके) ये हैं

मि० वनवारीलाल मेरे वतनी ! किसी ज़माने में प्रसिद्ध अभिनेता मास्टर रहमत के साथ ...

आनन्द और वनवारीलाल (एक साथ) आप से मिल कर वड़ी प्रसन्नता हुई।

(दोनों जरा हसते हैं।)

भोलानाथ : ये आप क्या उठा लाये इतनी लौकियाँ ?. . .

(कमला धीमे से कराहती है।)

वनवारीलाल : योंही नीचे चला गया था। वाहर विक रही थीं, (हँस कर) मैंने कहा चलो. . ..

(कमला तनिक और ज़ोर से कराहती है।)

वनवारीलाल : (मुड कर और चौंक कर) क्या वात है ? क्या वात है ?

(स्वर में चिंता)

भोलानाथ : इन्हें अचानक दौरा पड़ गया वड़ी मुश्किल से होश आया है। प्रायः पड़ जाया करता है दौरा.. . हिस्टीरिया ....

वनवारीलाल : तो आप इलाज-उपचार .. ?

भोलानाथ : इलाज उपचार वहुत हुआ। कर्नल (फिर वात के रुख को वदल कर) ये तो वीमार पड़ गयीं और (जरा हँस कर) लौकियाँ आप इतनी उठा लाये। (फिर आनन्द से) क्यों भाई आनन्द, तुम तो कहते थे .

आनन्द : मैं तो आज उपवास से हूँ, तवीयत भारी है ?

भोलानाथ मैं भी खाने के मूड* में नहीं।

वनवारीलाल : (अन्दर रसोई-घर की ओर पग उठाते हुए) लौकी की

* Mood

खीर हिस्टीरिया में बड़ा लाभ करती है। और मैं पकाता भी अच्छी हूँ। (ज़रा हँस कर) साथ ही अपने लिए भी दो रोटियाँ सेक लूँगा और तरकारी भी .....लौकी ही की बन जायगी। मेरा तो विचार है, आप भी खायँ, मज़ा न आ जाय तो नाम नहीं। अन्दर अँगीठी तो होगी ही, कोयलों की आँच पर लौकी की खीर बनती भी ऐसी है कि क्या कहूँ?

(रसोई-घर में चला जाता है।)

आनन्द : (धीरे से) यह ऐसे न जायगा।

बनवारीलाल : (रसोई-घर से) क्यों भई, मसाला कहाँ है?

कमला : (लेटे लेटे) कह दो, समाप्त हो गया है।

भोलानाथ : (जरा ऊँचे स्वर से) मसाला तो मित्र, समाप्त हो गया!

बनवारीलाल : (अन्दर से) और घी कहाँ है?

कमला : कह दो समाप्त हो गया है।

भोलानाथ : (कंधे झाड़ कर) अब यह कैसे कह दूँ?

आनन्द : (भोलानाथ से, ऊँचे स्वर में) अरे घी नहीं लाये तुम, सवेरे ही भाभी ने कहा था कि घी खतम हो गया है, कैसे गृहस्थ हो तुम!

(धीरे से, शरारत की हँसी हँसता है।)

बनवारीलाल : अच्छा एक आने *का घी कम-से-कम आज के लिए तो

* नाटक यदि आज कल खेला जाय तो आज की मँहगाई के अनुसार एक आने के बदले चार या आठ आने कहना होगा। और ऐसे ही दूसरे परिवर्तन अनिवार्य्य होंगे। जैसे पाँच के स्थान पर दस या बीस रुपये आदि आदि।

लेता आऊँ। मसाला भी, नहीं और चीनी भी,......मेरा ख्याल है......नहीं! और दूध भी .....नहीं! मैं जाकर चन्द मिनटों में सब लाया। ये जब तक कुछ खायेंगे नहीं, कमजोरी दूर न होगी।

(चला जाता है।)

आनन्द : (आश्चर्य से) यह विचित्र-अतिथि है जो अतिथि के साथ अतिथि-सेवक का कर्तव्य भी पूरा कर रहा है और अपनी जेब से!......

भोलानाथ : मैं कहता हूँ आनन्द यह जोंक है, कोई और तरकीब भिड़ाओ। पाँच आने खर्च कर देगा तो क्या हुआ! गत-वर्ष जाते-जाते मुझसे पाँच रुपये ले गया था।

कमला : (चारपाई से उछल कर) दिये आपने पाँच रुपये!

भोलानाथ : (कंधे झाड़ कर) अब मैं......!

कमला : और मैं पाँच पैसे माँगती हूँ, तो नहीं मिलते।

भोलानाथ : अब वतनी .....!

कमला : (क्रोध से) तो भुगतिये, पाँच क्या मेरी ओर से पाँच सौ दे दीजिए। बस मुझे मैके छोड़ आइए!

आनन्द (उल्लास से उछल कर) ओह (ताली बजाकर) स्प्लेंडिड*... मैके .....ठीक है। जल्दी करो, भाभी को लेकर किसी पड़ोसी के यहाँ चले जाओ और वह आया तो मैं कह दूँगा, भाभी की तबीयत बहुत खराब हो गयी थी, आखिर भाई साहब उन्हें मैके छोड़ने चले गये क्यों!

(प्रशंसा पाने की इच्छा से दोनों की ओर देखते हैं।)

भोलानाथ : हाँ, यह तरकीब खूब है। (पत्नी से) तुम जरा अन्दर

*Splendid = खूब

पड़ोसिन से बातें करना। मैं कुछ देर के लिए उनके पति के पास बैठक में बैठ जाऊँगा। (आनन्द से) किन्तु मित्र, कहता हूँ यदि वह न गया!

आनन्द : उसके देवता भी जायँगे। तुम्हारे जाते ही ताला लगा कर मैं भी खिसक जाऊँगा बस!

कमला : वाह! ताला लगा कर आप चले जायँगे तो जो बर्तन वह ले गया है—वे! नहीं आप यों कहना कि वे चले गये हैं, मैं भी जा रहा हूँ। बस निकाल कर घास-मण्डी तक छोड़ आना।

भोलानाथ : घास-मंडी तक! यह ठीक है!

(ठहाका मारता है।)

आनन्द : हाँ हाँ, पर तुम जल्दी करो, वह आ जायगा।

भोलानाथ : हां-हा जल्दी करो, (कमला को ट्रंक खोलने के लिए जाते देख कर) मैं कहता हूँ नयी साड़ी पहनने की जरूरत नहीं, तुम सचमुच मैके नहीं जा रही हो! और वे हमारे पड़ोसी तुम्हें इन कपड़ों में कई बार देख चुके हैं।

कमला : (ट्रंक को जोर से बन्द कर उठते हुए) मैं पूछती हूँ.......—

आनन्द : हाँ-हाँ, वहीं पूछना चलो-चलो.......

(दोनों को ढकेलते हुए ले जाते हैं।)

पर्दा

दृश्य दूसरा

उसी मकान का बरामदा

[बरामदा, एक ओर से, जिधर दर्शक बैठे हैं, खुला है। इस ओर बड़ी-बड़ी चिकें लगी हुई हैं जो खोल दी जाती हैं तो यह बरामदा एक लम्बा-सा कमरा बन जाता है। इस समय क्योंकि चिकें बन्द, छत के साथ लटक रही हैं, इसलिए बरामदे में क्या हो रहा है, इसे दर्शक भली-भाँति देख सकते हैं।

दो हल्की-हल्की बेंत की कुर्सियाँ बरामदे में बायीं ओर को रखी हैं। उन पर दो वर्ष से रोगन नहीं किया गया। कुर्सियों के आगे एक बेंत की ही तिपाई रखी है। जिस पर मैला सा, कुर्सियों के रंग का नीला कपड़ा बिछा है।

बायीं ओर एक दरवाजा है, जो सीढ़ियों पर खुलता है। सामने दो दरवाजे हैं जो क्रमश पहले दृश्य के दो कमरों को जाते हैं। रसोई-घर शायद इन कमरों से परे अन्दर की ओर को है। दरवाजे पुरानी तर्ज के हैं और इनके ऊपर रौशनदान हैं, जिनके शीशे शायद अभी तक नहीं लगे या टूट गये हैं। हाँ, उनकी जगह गत्ते के टुकड़े लगे हुए हैं। दो खाली चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं।

एक कुर्सी पर मि० आनन्द बैठे हैं, दूसरी कुर्सी पर उनके पैर हैं। उनके दायीं ओर तिपाई पर जूठे खाली बर्तन रखे हैं।

उस समय जब पर्दा उठता है, वे सिग्रेट सुलगाने की फ़िक्र में हैं।]

आनन्द : (उस दियासलाई को धरती पर पटक कर जो बुझ गयी है) हूँ!

(भोलानाथ सीढ़ियों के दरवाज़े से झाँकता है।)

भोलानाथ : मैं कहता हूँ, हमें वहाँ बैठे-बैठे एक घंटा हो चुका है और तुमने अभी तक आवाज़ नहीं दी।

(उछल कर आनन्द उसके पास जाते हैं।)

आनन्द : मैं कहता हूँ, धीरे बोलो, वह रसोई-घर में बैठा खाना खा रहा है।

(दोनों बरामदे के बीच आ जाते हैं।)

भोलानाथ : (बर्तनों की ओर देख कर) और यह तुम?

आनन्द : मैंने भी उपवास खोल लिया। कम्बख्त, लौकी की खीर तो ऐसी स्वादिष्ट बनाता है कि क्या कहूँ।

भोलानाथ : परन्तु

आनन्द : परन्तु क्या? जो तय हुआ था, उसके अनुसार ही मैंने सब-कुछ किया। पर वह एक ही दुष्ट है।

भोलानाथ : (सोचते हुए तो गया नहीं?

आनन्द : वह इस तरह आसानी से न जायगा, ऐसे को साफ जवाब .

भोलानाथ : परन्तु शिष्टता भी कोई चीज़ है तुम नहीं समझते आनन्द!

(सिर खुजाते हुए कमरे में घूमने लगता है।)

आनन्द : साफ जवाव नहीं दे सकते तो सुनतो !

भोलानाथ : तुमने उससे कहा नहीं कि भाभी की तवीयत

आनन्द : कहा क्यों नहीं। जव वह सव चीजे वापस लेकर आया तो मैंने बुरा-सा मुह बना कर कहा - भाभी की तवीयत तो बड़ी खराव हो गयी। उन्होंने कहा मैं तो मेके जाऊँगी, और वे ठहरे वीवी के गुलाम उसी दम लेकर चले गये।

भोलानाथ : (अत्यन्त क्रोध से) वीवी के गुलाम !

आनन्द : (हँस कर और भी धीरे से भेद भरे स्वर में) अरे वह तो मैंने केवल वात वनाने के लिए कहा था।

भोलानाथ . (दिल ही दिल मे क्रोध-के-घूँट पीकर) हुँ !

आनन्द : यह कह कर मैं ताला उठाने के लिए वढा और वह रसोई-घर में चला गया। मैंने ताले को हाथों में उछालते हुए कहा --मैं तो जा रहा हूँ। कहने लगा खाना तो खाते जाइएगा, लौकी की खीर का मजा ।

भोलानाथ : और तुम्हारे मुँह में पानी भर आया ?

आनन्द : नहीं, मैंने कहा--मैं तो जाऊँगा।

भोलानाथ : फिर ?

आनन्द : उसने वेफिक्री से अगीठी में कोयले डाल कर उन्हें सुलगाते हुए कहा—अच्छा तो हो आइए, पर आ जाइएगा जल्दी, ठण्डी खीर का क्या मजा आयगा !

भोलानाथ : (गुस्से से दाँत पीस कर) हुँ !

आनन्द : तव मैंने दिल में सोचा कि यह इस तरह न जायगा। कोई दूसरी तरकीव सोचनी पड़ेगी। चाहिए तो यह था कि मैं ताला लगा कर वाहर वरामदे में मिलता, पर भाभी की दो तश्तरियों ने

भोलानाथ : (आकुलता से) फिर-फिर . .. ?

आनन्द : फिर क्या, मैंने सोचा कि इन्हें यहाँ छोड़ कर घर से नहीं जाना चाहिए, कहीं कोई चीज ही न उठा कर चम्पत हो जायँ, इसलिए बात बदलकर मैंने कहा वैसे जाने की मुझे कोई जल्दी नहीं। यह आपने ठीक कहा कि खीर का मजा ताजी पकी ही में है। लाइए देखें तो सही आप खीर कैसी बनाते हैं ? बस, उन्होंने खीर तैयार की लौकी ही की सब्जी बनायी और हल्की-हल्की रोटियाँ सेंकी— कम्बख्त गजब की रसोई बनाता है।

भोलानाथ . (कंधे झाड़ कर निराशातिरेक से) अब . ..

(सिर नीचे किये घूमता है।)

आनन्द : अब क्या, तुम भी निश्चिन्त होकर चढा जाओ। भूखे पेट कुछ न सूझेगा, तर माल अन्दर जाय तो . . ..

[अन्दर कमरे से बनवारी रूमाल से हाथ पोंछता हुआ प्रवेश करता है।]

बनवारीलाल : (चौंक कर) अरे ! गये नहीं आप ?

भोलानाथ . (जैसे ऊब से) गाड़ी मिस कर गये।

बनवारीलाल और कमला जी . ?

भोलानाथ : (चिढ़ कर) उन्हें फिर दौरा पड़ गया।

बनवारीलाल : (गम्भीरता से) ओहो, तो कहाँ

भोलानाथ · वेटिंग-रूम में बिठा आया हूँ। दूसरी गाड़ी देर से जाती थी, इसलिए . .

बनवारीलाल : (खेद के साथ अन्दर को मुड़ता हुआ) एक डिब्बे में खीर डाल कर बन्द किये देता हूँ। साथ ले जाइए, विश्वास कीजिए,

लौकी की खीर हिस्टीरिया के दौरे में बड़ा लाभ करती है और फिर वे प्रात. से भूखी भी तो होंगी।

भोलानाथ : (क्रोध को छिपाते हुए) नहीं, कष्ट न कीजिए, मै दवाई के साथ थोड़ा-सा दूध पिला आया हूँ।

वनवारीलाल : आप ही लीजिए (आनन्द की ओर देख कर) क्यो प्रोफेसर साहब, इन्होंने भी तो सुवह का. . ?

भोलानाथ : (अन्यमनस्कता) मैं तो खाने के मूड में नहीं !

वनवारीलाल : (खिन्न हुए विना) क्यो न हो (तनिक हॅस कर) वह एक वार किसी ने एक साधू से पूछा था – खाने का ठीक समय कौन सा है ? उसने उत्तर दिया – सम्पन्न का जब मन हो और विपन्न को जब मिले। आप ठहरे धनी-मानी और हम (हिं हिं करते हुए) निर्धन ! अच्छा, पान तो लेंगे न ?

भोलानाथ : (रूखेपन से) मै पान नहीं खाता।

वनवारीलाल (मुस्कराकर) और आप प्रोफेसर साहव ?

आनन्द · (जो वहुत खा गया है) मुझे कोई आपत्ति नहीं।

वनवारीलाल . अच्छा मैं नीचे पनवाड़ी से पान ले आऊँ .....(वेपरवाही से हसता हुआ चला जाता है।)

भोलानाथ (कन्धे झाड कर) मैं कहता हूँ अव. . .?

आनन्द : (चुप ?)

भोलानाथ : (आकुलता मे) आखिर अव क्या किया जाय ? वह कव तक पड़ोसी के यहाँ वैठी रहेगी ? तुम तो मजे से खाना खाकर कुर्सी पर डट गये हो और हमारी आँतें . .

आनन्द : भई खाना खाने के वाद मेरी तो सोचने-समझने की

शक्तियाँ जवाब दे जाती हैं, मैं तो सोऊँगा।

(उठते हैं)

भोलानाथ : पर तुम कहते थे, इसकी खबर लूँगा .....

आनन्द : (फिर बैठ कर) वह तो ज़रूर लूँगा, पर दो-चार क्षण आँख लग जाय तो कुछ सूझे।

[तन्द्रिल आँखों से भोलानाथ की ओर देखते और हँसते हैं। भोलानाथ निरारा-सा हाथ कमर के पीछे रखे सोचता हुआ घूमता है।]

भोलानाथ . उठो, हो चुका तुम से। बाहर ताला लगाये देते हैं। स्वयं रो-पीट कर चला जायगा। हम दोनों किसी होटल में खाना खा लेंगे।

आनन्द . (कुर्सी पर पीछे की ओर लेटकर जमाही लेते हुए) तो फिर मुझे क्यों घसीटते हो? मुझे नींद लगी है।

(फिर कुर्सी से उठते हैं।)

भोलानाथ . (जो बहुत तेज़ी से कमरे में घूम रहा है, अचानक रुक कर) आखिर क्या मतलब है तुम्हारा?

आनन्द : (फिर कुर्सी में धँस जाते हैं।) अरे भाई तुम बाहर ताला लगा कर जाना चाहते हो, लगा जाओ उस दूसरे कमरे को अन्दर से बन्द कर जाओ और इस कमरे में बाहर से ताला लगा दो। मुझे तीन बजे प्रिंसिपल गिरधारीलाल से मिलने जाना है। तब मैं उस कमरे से निकल कर बाहर से ताला लगाता जाऊँगा। अब जल्दी करो नहीं तो वह आ जायगा।

(उठ कर बायीं ओर के कमरे में चले जाते हैं।)

आनन्द : (अन्दर से) लो, मैं तो लेट गया। अब पान स्वप्न ही में खाऊँगा।

[भोलानाथ कुछ क्षण तक घूमता है फिर तेज़ी से वह भी अन्दर चला जाता है। उसकी क्रोध से भरी चिड़चिड़ी आवाज़ आती है।]

भोलानाथ ताला कहाँ है ? मैं कहता हूँ ताला कहाँ है ?.....कम्बख्त ताला..... मिल गया ! मिल गया !!

[ताला हाथ में लिये आता है और अंगुली में कुंजी घुमाता है।]

आनन्द : (अन्दर से) अरे देखो यह उसका बैग बाहर रखते जाओ नहीं तो इसी बहाने आ जायगा।

[भोलानाथ फिर अन्दर जाता है और कपड़े का एक पुराना, मैला-सा हैंड-बैग लेकर आता है। हैंड-बैग को बाहर दीवार के साथ टिका देता है और दरवाजा बन्द करके ताला लगाने लगता है कि अन्दर से प्रोफेसर आनन्द की आवाज़ आती है।]

—: सुनो-सुनो।

भोलानाथ . (फिर जल्दी से किवाड़ खोल कर) कहो !

आनन्द : अरे बर्तनों को तो अन्दर रखते जाओ !

(भोलानाथ शीघ्रता से बर्तन उठा कर देता है।)

आनन्द · (बर्तन लेकर) और यह तिपाई और कुर्सी भी दे दो।

[भोलानाथ जल्दी-जल्दी तिपाई और कुर्सियाँ देता है, फिर जल्दी-जल्दी ताला लगाता है। जल्दी में चारपाई से ठोकर खाता है और बड़बड़ाता हुआ चला जाता है।

कहीं बाहर घड़ियाल 'टन' 'टन' करते दो बजाता है।

बनवारीलाल मुँह में पान दबाये और कागज़ में लिपटी पान की एक गिलौरी एक हाथ में थामे दाखिल होता है।]

बनवारीलाल (दरवाजे लगे हुए देख कर आवाज़ देता है) भोलानाथ, भोलानाथ!

[फिर कमरे में ताला लगा और बाहर अपना बैग पड़ा देख कर चौंकता है, मुस्कराता है। फिर अपने आप]

. खैर अभी तो मैं सोऊँगा।

[चारपाई बिछाता है, जो दूसरे कमरे के दरवाज़े को बिलकुल रोक लेती है। उस पर लेट कर सिगरेट सुलगाता है और एक दो कश लगा करवट बदल लेता है।]

(पर्दा गिरता है।)

[कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है और बनवारीलाल गहरी नींद में सोया दिखायी देता है, उसके खर्राटों की आवाज़ साफ़ सुनायी देती है।]

(पर्दा)

दृश्य तीसरा

[पर्दा धीरे-धीरे उठता है। दृश्य वही। वनवारीलाल करवट बदलता है। अन्दर घड़ी में तीन बजते हैं, वह धूप की ओर देखता है।]

वनवारीलाल (अपने आप से) ओह, धूप कहाँ चली गयी ?

[ऊपर रोशन-दान का गत्ता हिलता है और किसी का हाथ बाहर निकलता है। वह चुपचाप करवट बदल लेता है।

धीरे-धीरे गत्ते को हटा कर प्रो० आनन्द सूट-बूट पहने रौशनदान में से बड़ी कठिनाई से उतरने का प्रयास करते हैं।]

वनवारीलाल (जैसे किसी की आहट से चौंक कर) कौन है ? (फिर चौंक कर और उठ कर) कौन, कौन रौशनदान से अन्दर दाखिल होने का प्रयास कर रहा है ? (शोर मचाता है) चोर...चोर दौड़ियो...भागियो !

आनन्द : मैं हूँ आनन्द।

(आवाज़ गले में फँसी हुई सी है)

वनवारीलाल : (पूर्ववत् स्वर में घबराहट लाकर) चोर... चोर ....
दौड़ियो. ..भागियो !!

[चार-पाँच आदमियों के भागते आने का स्वर । एक मारवाड़ी एक हिन्दुस्तानी और दो एक पंजाबी सीढ़ियों से प्रवेश करते हैं ।]

मारवाड़ी : (जिसकी साँस अभी फूल रही है) काईं छे बाबू शाब, काईं छे* ?

हिन्दुस्तानी : क्या बात है भाई क्या बात है ?

पंजाबी : (सब को पीछे धकेलकर) की गल्ल ऐ, की गल्ल ऐ, किद्धर चोरी होई है, किद्धर † ?

वनवारीलाल : (आनन्द की ओर संकेत कर के) यह देखिए आजकल के जंटलमेन बेकार। कोई काम न मिला तो यही व्यवसाय अपना लिया। दिन दहाड़े डाका डाल रहे हैं। मेरे मित्र हैं न पंडित भोलानाथ। मैं उनसे मिलने के लिए आ रहा था। देखता हूँ तो ये अन्दर घुसे जा रहे हैं। यह बैग शायद पहले निकाल कर रख चुके थे। (व्यंग्य से आनन्द की ओर देखकर) उतरिए महाशय, अब जरा चन्द दिन बड़े घर की रोटियाँ तोड़िए !

हिन्दुस्तानी : (आगे बढ़कर) यह बैग उठा रहे थे ?

वनवारीलाल : न-न इसे हाथ न लगाइएगा। इसमें सब गहने भरे होंगे। पुलिस ही आकर खोलेगी।

आनन्द : (जो बिलकुल घबरा गया है) मैं...मै ..

मारवाड़ी : अबे साला, मै-मैं क्या, नीचे तो उतर ! मार-मार कर भूंस बना देंगे !

*क्या है बाबू साहब क्या है ?
†क्या बात है, क्या बात है, किधर चोरी हुई है, किधर ?

हिन्दुस्तानी : (दार्शनिक भाव से) आजकल की बेकारी ने नौजवानों को चोर और डाकू बना दिया है !

पंजाबी : ओए, ठत्तर ओए ! ओथेई की ठग हो गया ऐं । सूट तां वेखो जिवें नाहढ़ूखाँ दा साला होंदा ऐ !*

[आगे बढ़ कर आनन्द को पाँव से पकड़ कर घसीटता है । वह धम से फर्श पर आ गिरता है । पंजाबी युवक दो चार चौरस थप्पड़ उसके मुँह पर जमा देता है ।]

आनन्द : (क्रोध और अपमान से जलकर) मैं पंडित भोलानाथ का मित्र प्रो० आनन्द......

पंजाबी : चल चल प्रोफेसर दा बच्चा, जाके थानेवालियों नूं दस्सीं कि तू प्रोफेसर हैं जाँ प्रिंसिपल !+

(सब ठहाका मारते हैं ।)

बनवारीलाल : मैं भी उनका मित्र हूँ, लेकिन उनकी अनुपस्थिति में मकान नहीं तोड़ता फिरता ।

मारवाड़ी . आजकल जमानो ऐसोई छै बाबू जी ! काई करायो जाय ।†

बनवारीलाल : (गर्ज कर) क्या किया जाय ! मैं अभी पुलिस को टेलीफोन करता हूँ । आप इसे पकड़ रखें (जाते हुए) और देखिए बैग को हाथ न लगाइएगा ।

*अबे ठत्तर, यहाँ ही क्या ठग गया है, सूट तो देखिए जैसे नाहढ़ूखाँ का साला होता हो ।

+चल चल प्रोफेसर का बच्चा, जाकर थाने वालों को बताना कि तू प्रोफेसर है या प्रिंसिपल !

†आजकल का ज़माना ऐसा ही है बाबू जी, क्या किया जाय ।

[कई और व्यक्ति आते हैं]

आनेवाले : क्या बात है ? क्या हुआ ? क्या हुआ ?

मारवाड़ी : यह चोर चौड़े-दिहाड़े चोरी कर रिहो छो शाव !*

हिन्दुस्तानी : (व्यंग्य से) जन्टलमैन चोर !

आनन्द : मैं कहता हूँ ।....

पंजाबी . (एक और थप्पड़ जमाकर) तूं की कहनाएँ नाले चोर नाले चतुर !×

(भीड़ को चीरता हुआ भोलानाथ आता है)

भोलानाथ : क्या बात ? क्या बात ?

मारवाड़ी : बच गया छे शाव, थाके चोरी कर रह्यो छो ।†

हिन्दुस्तानी : समझिए बच गये । आपके मित्र ने इसे ठीक मौके पर चोरी करते हुए पकड़ लिया ।

आनन्द : (जिसका साहस भोलानाथ के आने से बढ़ गया है) मैं कहता हूँ .....

मारवाड़ी : (लपक कर) तूं कहे छे ।*

हिन्दुस्तानी : (श्रद्धा से) यह कहता है .....

पंजाबी . ऐह केहँदा ऐ (चबा चबा कर) नाले चोर, नाले चतुर ! ऐह

*यह चोर दिन-दिहाड़े चोरी कर रहा था साहब !

× तू क्या कहता है, चोर और फिर चतुर

†साहिब बच गये आप, यह आपके चोरी कर रहा था ।

*तू क्या कहता है ।

हेड वेग किथे लै चलिया सू ...*

(सब हँसते हैं ।)

भोलानाथ : (बढ़ कर पंजाबी की गिरफ्त से आनन्द को छुड़ाता हुआ) छोड़िये, छोड़िये आप सब जाइए । ये मेरे मित्र हैं, मैं इनसे निबट लूँगा ।

हिन्दुस्तानी : लेकिन चोरी. ..

भोलानाथ : मैं कहता हूँ, इन्होंने कोई चोरी नहीं की । आप जाइए । मेरी पत्नी को आना है और आप सीढ़िया रोके हैं ।

(सब बड़बड़ाते हुए चले जाते हैं ।)

पंजाबी : (रुक कर) पर ओह बाबू !†

भोलानाथ : (चीख कर) वह शैतान गया नहीं ?

(पंजाबी जल्दी-जल्दी चला जाता है)

आनन्द : वह तो पुलिस में रिपोर्ट लिखाने गया है ।

भोलानाथ : आखिर हुआ क्या ?

आनन्द : होता क्या, सब उसकी बदमाशी है ।

भोलानाथ : आखिर बात क्या हुई ?

आनन्द : होती क्या ? तुम्हारे जाने के बाद मैं लेट गया तो कुछ ही देर बाद वह आया । पहले तुम्हें आवाजें दीं, फिर शायद तौला देख बड़बड़ाया । चारपाई घसीट कर बिलकुल उस दरवाजे के आगे बिछा कर लेट गया । मैं । ...

*यह हेड बैग कहाँ ले चला था ।

†पर वह बाबू ।

भोलानाथ : तुम्हारे साथ ऐसा ही होना चाहिए था, कहा न था चलो हमारे साथ।

आनन्द : साढे तीन बजे मुझे प्रिंसिपल साहब से मिलना था। आखिर प्रतीक्षा करके मैं तैयार हुआ पर जाऊँ किधर से ? मैं तिपाई पर चढ़ कर रोशनदान तक चढ़ा, फिर उतरने लगा था कि उसे बाहर ही सोते छोड़ कर चल दूँ।

भोलानाथ : और वह तुम्हारा भी गुरु निकला ! मैंने कहा था न कि अव्वल दर्जे का पाजी है ?

आनन्द : उस ने तो शोर मचा दिया, इतने आदमी इकट्ठे कर लिए और उस पंजाबी ने तो कई थप्पड़ मेरे मुँह पर जड़ दिये।

(बनवारी प्रवेश करता है।)

बनवारीलाल : (जैसे कुछ जानता ही नहीं) ये विचित्र दोस्त हैं आपके। यह तो सब कुछ उठाकर ही ले चले थे।

भोलानाथ : आपको शर्म नहीं आती, ये तो अन्दर ही थे।

बनवारीलाल : पर मुझे क्या पता था, मैंने आवाजें दीं, ये बोले तक नहीं।

भोलानाथ : सो रहे होंगे।

बनवारीलाल : तो जब जगे थे, तब मुझे आवाज देते, रौशनदान से उतरने की क्या आवश्यकता थी... ?

भोलानाथ : अच्छा हटाइये इस मामले को। कमला की तबीयत खराब हो रही है। मैं इसी गाड़ी से उसे गुरदासपुर ले जाऊंगा। चलो आनन्द तुम मेरे साथ चलो। अब प्रिंसिपल साहब से कल मिल लेना।

वनवारीलाल : आप गुरदासपुर जा रहे हैं। आपकी ससुराल तो नवाँ शहर है?

भोलानाथ : वहाँ कमला के बड़े भाई रहते हैं।

वनवारीलाल : (चौंक कर) भाई !

भोलानाथ म्युनिसिपल कमेटी में हेड क्लर्क हैं।

वनवारीलाल . म्युनिसिपल कमेटी में (उल्लास से हल्की सी ताली बजाकर) यह आपने अच्छी खबर सुनायी। मैं स्वय परेशान था। वहाँ म्युनिसिपल कमेटी में मुझे काम है। गुरदासपुर में मेरा कोई परिचित नहीं था। अब आप साथ होंगे तो सब कुछ सुगमता से हो जायगा। ठहरिए मैं यह बैग उठा लूँ।

(बढ़कर बैग उठाता है)

पर्दा

वीणा, अगस्त १९४०

लक्ष्मी का स्वागत

(एक ट्रेजेडी)

स्थान —

ज़िला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान।

समय

नौ दस बजे सुबह।

[दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिस के इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है, मेज पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं।

दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है; बायें कोने में एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों में खुलता है।

दायीं दीवार में एक दरवाजा है जो उस कमरे में खुलता है, जहाँ इस समय रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तस्वीरें मेखों से जड़ी हुई हैं। छत पर काग़ज़ का एक पुराना फानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की से बाहर की ओर देख रहा है। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। हवा की सॉय-सॉय और वर्षा के थपेड़े सुनायी देते हैं।

कुछ क्षण बाद खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है। फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

बीमार के कमरे से रौशनलाल प्रवेश करता है ।]

रौशन : (दरवाजे को धीरे से बन्द करके) डाक्टर अभी नहीं आया ?

सुरेन्द्र : नहीं ।

रौशन : वर्षा हो रही है ?

सुरेन्द्र : मूसलाधार ! जल थल एक हो रहे हैं ।

रौशन : शायद ओले पड़ रहे हैं ।

सुरेन्द्र : हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं ।

रौशन : माधी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द्र : हाँ, पहुँच ही गया होगा । यह वर्षा और ओले ! नदियाँ बह रही होंगी बाजारों में !

रौशन : पर अब तक आ जाना चाहिये था उन्हें । (स्वयं बढ़कर खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़ कर वापस आ जाता है घुटे घुटे स्वर में) अरुण की तबियत गिर रही है ।

सुरेन्द्र : (चुप)

रौशन : (उसी आवाज में) उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है; उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है, उसकी आँखें खुली हैं, पर वह कुछ कह नहीं सकता बेहोश-सा, असहाय-सा, चुपचाप बिटर-बिटर तक रहा है। आँखें लाल और शरीर गर्म । सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है । (दीर्घ निश्वास छोड़ता है ।) क्या होने को है सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र : हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जायगा । देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है ।

(दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं । हवा की साँय-साँय ।)

रौशन : नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र (सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढ़कर खिड़की में देखता है, फिर वापस आ जाता है।]

रौशन : सामने के मकान का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फानूस को देख रहा है।]

रौशन : (घूमते हुए जैसे अपने आप) यह मामूली ज्वर नहीं, गले का यह कष्ट साधारण नहीं, (सहसा सुरेन्द्र के पास रुक कर) मेरा तो दिल डर रहा है सुरेन्द्र, कहीं अपनी मा की भाँति अरुण भी तो मुझे धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है ?

(हवा की साँय-साँय और वर्षा के थपेड़े।)

: यह वर्षा, यह आँधी, यह मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, मौत की ये आवाज़ें .....

[बिजली ज़ोर से कड़क उठती है। बादल गरजते हैं और मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठते हैं।]

रसोई-घर से मा की आवाज़ : रौशी दरवाजा खोल आओ। देखो शायद डाक्टर आया है।

(रौशन सुरेन्द्र की ओर देखता है।)

सुरेन्द्र : मैं जाता हूँ अभी।

[तेज़ी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भापी प्रवेश करते हैं। भापी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है।]

डाक्टर : क्या हाल है बच्चे का ?

[बरसाती उतारकर खूंटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है ।]

रौशन : आपको भापी ने बताया होगा डाक्टर साहब । मेरा तो जैसे हौसला टूट रहा है । कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ । साँस कुछ कष्ट से आने लगा, किन्तु आज तो वह अचेत-सा पड़ा, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने की प्रबल कोशिश कर रहा है ।

डाक्टर : चलो, देखता हूँ ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं । बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज़ आती है । मा तेजी से प्रवेश करती है ।]

मा : भापी ! भापी !

(बीमार के कमरे से भापी आता है ।)

: देखो भापी बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है । (आँखों में चमक आ जाती है) मेरा तो ख्याल है, वही लोग आये हैं । मैंने रसोई-घर की खिड़की से देखा है । टपकते हुए छाते लिये और बरसातियाँ पहने ...

भापी : वह कौन ?

मा : वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे । बड़े भले आदमी हैं । सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है । इतनी वर्षा में भी .....

[ज़ोर-ज़ोर से कुंडी खटखटाने की निरन्तर आवाज़ ! भापी भागकर जाता है, मा खिड़की में जा खड़ी होती है । बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है, सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है ।]

सुरेन्द्र : भापी कहाँ है ?

मा : बाहर कोई आया है, कुंडी खोलने गया है।

[फिर तेजी से वापस चला जाता है। मा एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में टहलती है। भापी प्रवेश करता है।]

मा . कौन हैं ?

भापी : शायद वही हैं। नीचे बैठा आया हूँ, पिता जी के पास, तुम चलो।

मा : क्यों ?

भापी : उनके साथ एक स्त्री भी है।

[मा जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा जरा-सा खोलकर देखता है और आवाज देता है—]

सुरेन्द्र : भापी !

भापी : हाँ !

सुरेन्द्र : इधर आओ !

[भापी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए मौन छा जाता है। केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर कमरे में आता है। हवा से फानूस सरसराता है। कुछ क्षण बाद डाक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भापी बाहर आते हैं।]

रौशन . अब बताइए डाक्टर साहब !

डाक्टर : (अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन : बहुत नाजुक है ?

डाक्टर : हाँ !

रौशन : कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर : भगवान के घर कुछ कमी नहीं, पर आपने बहुत देर कर दी। डिपथीरिया* में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन : हमें मालूम ही नहीं हुआ डाक्टर साहब, कल साँझ को इसे ज्वर हो आया, गले में भी इसे बहुत कष्ट लगा। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया वही जो हमारे बाजार में हैं उन्होंने गले में आयोडीन-ग्लिसरीन पेन्ट कर दी और फीवर मिक्स्चर बना दिया, दो खुराकें दीं, इसकी हालत तो पहले से भी खराब हो गयी। शाम को यह कुछ अचेत-सा हो गया। मैं भागा-भागा आप के पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भाभी को भेजा, फिर भी आप न मिले। और फिर यह झड़ी लग गयी—ओले, आँधी और झक्कड़! जैसे प्रलय के बन्धन ढीले हो गये हों।

[बाहर हवा की साँय साँय सुनायी देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर तक रहा है; सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर ज़ोर-ज़ोर से हिलते फानूस को देख रहा है।]

डाक्टर : (सिर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाभी ने जो लक्षण बताये थे उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान ले आया था और मेरा ख्याल ठीक निकला। भाभी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ, यहीं बाजार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद कंठ

* डिपथीरिया गले का सक्रामक रोग जिसमें सांस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है। मांसप्रतानिका !

में दवाई की दो-चार बूँदें, और एक घंटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घंटे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और कर जाऊँगा। कोई दूसरा इलाज भी तो नहीं!

रौशन : डाक्टर साहब, (आवाज भर आती है।)

डाक्टर . घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी शुश्रूषा करो, शायद.......….

रौशन : मैं अपनी ओर से कोई कसर न उठा रखूँगा डाक्टर साहब। सुरेन्द्र, देखो तुम मेरे पास रहना, जाना नहीं, यह घर इस बच्चे के लिए वीराना है। ये लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं......

सुरेन्द्र : क्या कहते हो रौशन........

डाक्टर . रौशनलाल.........

रौशन : आप नहीं जानते डाक्टर साहब! ये सब लोग हृदय-हीन हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र . यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई!

रौशन . दुनिया का व्यवहार—इतना निठुर, इतना निर्मम, इतना क्रूर! नहीं जानता कि जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी के लाड प्यार में पली होती है, फिर.... (डाक्टर को जाते देखकर) आप जा रहे हैं डाक्टर साहब (भापी से) देखो भापी जल्दी आना, बस, जैसे यहीं खड़े हो।

(डाक्टर और भापी चले जाते हैं)

रौशन : सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़कर चला जायगा ! मैं तो उसे देखकर सरला का दुख भूल चुका था, लेकिन अब...अब...

(हाथों से चेहरा छिपा लेता है ।)

सुरेन्द्र : (उसे धकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मुर्दों में जान आ जाय, मरणासन्न उठ कर खड़े हो जायँ ।

रौशन . (भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा । उसका कोई भरोसा नहीं निर्मम और क्रूर ! उसका काम सते हुओं को और सताना है, जले हुओं को और जलाना है ।

सुरेन्द्र : दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाभी अभी क्यों नहीं आया ?

[उसे दरवाजे के अन्दर धकेल कर मुड़ता है । दायीं ओर के दरवाजे से मा प्रवेश करती है ।]

मा . किधर चले ?

सुरेन्द्र जरा भाभी को देखने जा रहा था ।

मा . क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र : उसकी हालत खराब हो रही है ।

मा : हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया है । ये डाक्टर जो न करें थोड़ा है । बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी । अच्छी-भली हकीम की दवा हो रही थी । आराम हो रहा था । जिगर का बुखार ही तो था, दो-दो वर्ष भी रहता है पर वह डाक्टरों को लाये बिना न माना । और उन्होंने दे दिया दिक़ का फतवा, हमने तो भाई इसी-लिए कुछ कहना सुनना ही छोड़ दिया है । आखिर मैंने भी तो पाँच-

पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र : डिपथीरिया !

मा : क्या !

सुरेन्द्र : बड़ी भयानक बीमारी है मा जी ! अच्छा-भला आदमी चन्द घंटों के अन्दर समाप्त हो जाता है।

मा : राम राम ! तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला। उसे जरा ज्वर हो गया है, छाती जम गयी होगी, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, पर मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र : नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है आप से अधिक वह किसे प्रिय होगा !

(चलने को उद्यत होता है।)

मा : सुनो !

(सुरेन्द्र रुक जाता है।)

मा : मैं तुमसे एक बात करने आयी थी, तुम उसके मित्र हो न, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र : कहिये ?

मा : आज वे फिर आये हैं।

सुरेन्द्र : वे कौन ?

मा : सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं,

सामने ही न आया। हार कर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने इन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र : मा जी....

मा : तुम जानते हो बच्चा, दुनिया जहान का यह नियम है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप ही को देख लो, अभी-दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफा भी न निचोड़ा था कि नकोदरवालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद ब्याह भी हो गया और अब तो सुनते हैं, बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र : मा जी, रामप्रताप और रौशन में कुछ अन्तर है।

मा : यही न, कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है, और यह पढ़-लिख कर अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गयी तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ-सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लांछन लगायेंगे और फिर कौन ऐसा क्वाँरा है....

सुरेन्द्र : मा जी, तुम्हारा रौशन बिन-ब्याहा न रहेगा, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ।

मा : यह ठीक है बेटा, पर अब ये भले आदमी मिलते हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है। और सब से बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े अच्छे हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीके वाली है कि क्या कहूँ। बोलती है तो फूल तोलती है। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है वह स्वयं कैसे न अच्छी होगी?

सुरेन्द्र : मा जी, अरुण की दशा शोचनीय है। जाकर देखो तो मालूम हो।

मा : बेटा, अब ये भी तो इतनी दूर से आये हैं--इस आँधी और तूफ़ान में! कैसे इन्हें निराश लौटा दें ?

सुरेन्द्र : तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं ?

मा : तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे, इतने में मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र : मुझसे यह नहीं हो सकता मा जी! बच्चे की दशा ठीक नहीं बल्कि चिन्ताजनक है। आप नहीं जानतीं, वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान उसी में केन्द्रित हो गया है। और इस समय जब बच्चे की दशा ठीक नहीं, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ ?

[बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन प्रवेश करता है बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी फटी सी !]

रौशन : सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो ? भगवान के लिए जाओ, जल्दी जाओ ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भापी अभी आया क्यों नहीं ? अरुण तो....

सीढ़ियों से : मै आ गया भाई साहब !

[भापी दवाई की शीशी लिए आता है। सुरेन्द्र और भापी बीमार के कमरे में जाते हैं। मा रौशन के समीप आती है।]

मा : क्या बात है, घबराये हुए क्यो हो ?

रौशन : मा उसे डिपथीरिया हो गया है।

मा : मुझे सुरेन्द्र ने बताया। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर....

रौशन , क्या कर रही हो ? तुम्हें स्वयं अगर किसी बात का पता नहीं तो दूसरों को तो कुछ कहने दो।

मा : चलो, मैं चलकर देखती हूँ।

(बढ़ती है।)

रौशन (रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ। उसे बेहद कष्ट है, साँस उसे मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई बुट्टी-बुट्टी की बात करेगी।

(जाना चाहता है।)

मा : सुनो !

(रौशन मुड़ता है। मा असमंजस में है।)

रौशन : कहो !

मा : चुप।

रौशन : जल्दी कहो मुझे जाना है।

मा : वे फिर आये हैं।

रौशन वे कौन ?

मा : वही सियालकोट वाले !

रौशन . (क्रोध से) उनसे कहो, जहाँ से आये हैं वहीं चले जायँ।

(जाना चाहता है।)

मा : रौशी !

रौशन : मैं नहीं जानता, मै पागल हूँ या आप ! क्या आप मेरी सूरत नहीं देखते ? क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखाई नहीं देता ? शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ! घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है। आखिर आप लोगों को हो क्या गया है ? क्या वह मेरी पत्नी न थी क्या। वह . . . .

मा : शोर मत मचाओ ! हम तुम्हारे ही लाभ की बात कर रहे हैं, रामप्रताप

रौशन : (चीखकर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो ! अपढ, अशिक्षित, गँवार! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का माद्दा कहाँ है ? वह जानवर है।

मा : तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था . . . .

रौशन : वे . . मा जाओ, मैं क्या कहने लगा था।

[तेजी से मुड़कर कमरे में चला जाता है दरवाजा खट से बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए खँखारते खँखारते रौशन के पिता प्रवेश करते है।]

पिता . क्या कहता है रौशन ?

मा : वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबीयत बहुत खराब है।

पिता : (खंखार कर) एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गयी ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाजी है।

: (जोर से आवाज देता है) रौशी,

(खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज !)

(फिर आवाज़ देता है)- रौशी,

[रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखें रुँआसी और निगाहों में करुणा।]

रौशन : (अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें आप, क्या शोर मचा रहे हैं!

पिता : इधर आओ!

रौशन : मेरे पास समय नहीं!

पिता : (चीख़ कर) समय नहीं?

रौशन : धीरे बोलें आप!

पिता : मैं कहता हूँ, इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे जरा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन : मैं नहीं जा सकता!

पिता : नहीं जा सकता?

रौशन : नहीं जा सकता!

पिता : तो मैं शगुन ले रहा हूँ! इस वर्षा, आँधी और तूफ़ान में उन्हें अपने घर से निराश नहीं लौटा सकता। घर आयी लक्ष्मी का निरादर नहीं कर सकता।

(रोने की तरह रौशन हँसता है।)

रौशन : हाँ, आप लक्ष्मी का स्वागत कीजिए।

(खट से दरवाज़ा बन्द कर लेता है।)

पिता : (रौशन की मा से) इस एक महीने में हमने कितनों को इनकार नहीं किया, किन्तु इनको कैसे न कर दें? सियालकोट में इनकी बड़ी भारी फ़र्म है। मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया है। हज़ारों का तो इनके यहाँ लेन-देन है।

मा : वहू की बीमारी का पूछते होंगे ?

पिता : उन्हें सन्देह था, पर मैंने कह दिया, जिगर का ताप था। बिगड़ गया।

मा : बच्चे को पूछते होंगे !

पिता : हाँ पूछते थे। मैने कह दिया कि बच्चा है, पर मा की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती, परमात्मा ही मालिक है।

मा : तो आप हाँ कर दें।

पिता : हाँ मैं तो शगुन ले लूँगा।

[चले जाते है। हुक्के की आवाज दूर होते-होते गुम हो जाती है, मा खुशी-खुशी कमरे में घूमती है, भाषी आता है और तेजी से निकल जाता है।]

मा : भाषी !

भाषी : मैं डाक्टर के यहाँ जा रहा हूँ।

[तेज़ी से चला जाता है बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।]

सुरेन्द्र : (भरी हुई आवाज में) मा जी......

मा · (घबराये स्वर मे) क्या बात है ? क्या बात है ?

सुरेन्द्र . दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

मा · क्या ?

[आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है हवा की साँय-साँय।]

सुरेन्द्र : अरुण इस ससार से जा रहा है !

[फानूस टूट कर धरती पर गिर पड़ता है। मा भाग कर दरवाजे पर जाती है।]

मा : रौशी, रौशी !

(दरवाजा अन्दर से बन्द है ।)

मा : रौशी, रौशी !

रौशन : (कमरे के अन्दर से भर्राये हुए स्वर में) क्या बात है ?

मा : दरवाजा खोलो !

रौशन : तुम लक्ष्मी का स्वागत कर आओ !

मा : रौशी

रौशन : (चुप !)

मा रौशी !

[सीढ़ियों से रौशन के पिता के हुक्का पीने और खँखारने की आवाज़ आती है ।]

पिता (सीढ़ियों से ही) रौशन की मा, बधाई हो !

(पिता का प्रवेश । मा उनकी ओर मुड़ती है ।)

पिता : बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया ।

[कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रौशन आता है ।]

रौशन : हाँ, नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ !

पिता हैं ? मर गया !

[हाथ से हुक्का गिर पड़ता है और मुँह खुला रह जाता है ।]

मा मेरा लाल !

(चीख मार कर सिर थामे धम से बैठ जाती है ।)

सुरेन्द्र . मा जी, जा कर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

पर्दा

इम, मई १९३८

अधिकार का रक्षक

(एक व्यंग्य)

पात्र

श्री० सेठ

श्रीमती सेठ

नन्हा बलराम

रामलखन

भगवती

सम्पादक

कालेज के दो लड़के

इत्यादि

समय—

आठ बजे सुबह

स्थान

श्री० सेठ के मकान का ड्राइङ्ग रूम

[सामने बायीं ओर, दीवार के साथ एक बड़ी मेज लगी हुई है, जिस पर एक रैक में करीने से पुस्तकें चुनी हैं, दायें-बायें कोनों में लोहे की दो ट्रे रक्खी हैं, जिनमें से एक में आवश्यक कागज-पत्र आदि और दूसरी में समाचार-पत्र रक्खे हैं। बीच में शीशे का एक डेढ़ वर्ग गज का चौकोर टुकड़ा रक्खा है, जिसके नीचे जरूरी कागज दबे हुए हैं। शीशे के टुकड़े और किताबों के रैक के मध्य में एक सुन्दर कलमदान रक्खा हुआ है और एक-दो कलम शीशे के टुकड़े पर बिखरे पड़े हैं।

मेज के इस ओर एक गद्देदार कुर्सी है, जिसके पास ही दायीं ओर एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर टेलीफोन का चोंगा रक्खा हुआ है। स्टूल के दायीं ओर तख्त के बीच में स्टूल इस तरह रक्खा हुआ है कि उस पर पड़ा हुआ टेलीफोन का चोंगा दोनों जगहों से सुगमता के साथ उठाया जा सकता है। तख्त के पास एक आराम कुर्सी पड़ी हुई है। बायीं दीवार के साथ एक कौच का सेट है। बायीं दीवार में दो खिड़कियाँ हैं, जिनके

मध्य कैलेण्डर लटक रहा है। दायीं ओर दीवार में एक दरवाजा है, जो घर के बरामदे में खुलता है।

पर्दा उठने पर श्री० सेठ कुर्सी पर बैठ कोई समाचार-पत्र देखते नजर आते हैं।]

(टेलीफोन की घंटी बजती है)

(श्री० सेठ समाचार-पत्र ट्रे में फेंककर चोंगा उठाते हैं।)

—: हेलो! .... (जरा और ऊँचे) हेलो! .. हाँ, हाँ, मैं ही बोल रहा हूँ। घनश्यामदास। आप . . अच्छा अच्छा, रलाराम जी मन्त्री हरिजन सभा हैं! नमस्ते, नमस्ते। (जरा हँसते हैं) सुनाइए महाराज, कल के जलसे की कैसी रही? . अच्छा! आप के भाषण के बाद हवा पलट गयी। सब हरिजन मेरे पक्ष में प्रचार करने को तैयार हो गये? हिं हिं . हि हिं .. ठीक ठीक! आपने खूब कहा, खूब कहा आपने! हि हिं हिं हिं . . वास्तव में मैंने अपना समस्त जीवन पीडितों, पददलितों और गिरे हुओं को ऊपर उठाने में लगा दिया है। बच्चों को ही लीजिए! हमारे घरों में उनकी दशा कैसी शोचनीय है? उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की पद्धति कितनी पुरानी ऊल-जलूल और दकया-नूसी है? उनके स्वास्थ्य की ओर कितना कम ध्यान दिया जाता है और अनुचित-दबाव में रख कर उन्हें कितने डरपोक और भीरु बनाया जाता है? उन्हें ...

(छोटा बच्चा बलराम भीतर आता है।)

बलराम : बाबू जी, बाबू जी, हमें मेले ..

श्री० सेठ : (पूर्ववत् टेलीफोन पर बातें कर रहे हैं, पर आवाज़ तनिक ऊँची हो जाती है) हाँ, हाँ, मैं कह रहा हूँ कि मैंने बच्चों के लिए, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए उनके स्वास्थ्य . .

बलराम : (और समीप आकर कुर्ते का छोर पकड़ कर) बाबू जी .....

ओ० सेठ : (चोंगे से मुह हटाकर, क्रोध से) ठहर ठहर कमबख्त ! देखता नहीं मैं टेलीफोन पर बात ..

(बच्चा रोने लगता है।)

ओ० सेठ : (टेलीफोन पर) मैं आप से अभी एक सेकेंड में बात करता हूँ, इधर जरा शोर हो रहा है।

(चोंगा खट से मेज पर रख देते हैं।)

(बच्चे से) चल, निकल यहाँ से। सूअर ! कमबख्त !!

[कान पकड़कर उसे दरवाज़े की तरफ घसीटते हैं, बच्चा रोता हुआ बैठ जाता है ।]

: (नौकर को आवाज़ देते हैं) ओ रामलखन, ओ रामलखन !

रामलखन : (बाहर से) आये रहे बाबू जी।

(भागता हुआ भीतर आता है। साँस फूली हुई है।)

: जी बाबू जी।

ओ० सेठ (नौकर को पीटते हुए।) सूअर ! हरामखोर ! पाजी ! क्यों इसे इधर आने दिया ? क्यों इधर आने दिया इसे ?

रामलखन अब बाबू काहे मारत हो ? लिये तो जात रहे ?

(लड़के का बाजू थामकर उसे बाहर ले जाता है।)

ओ० सेठ और सुनो, किसी को इधर मत आने दो। कोई बाहर से आये तो पहले आकर खबर दो । समझे । नहीं तो मारकर खाल उधेड़ दूँगा।

[नौकर और लड़के को बाहर निकालकर जोर से किवाड़ लगा देते है।]

हूँ ! अहमक ! मुफ्त में इतना समय नष्ट कर दिया !

(चोंगा उठाते हैं ।)

— (तनिक कर्कश स्वर में) हेलो ! . . . (स्वर में तनिक विनम्रता लाकर) अच्छा, अच्छा आप अभी हैं (स्वर को कुछ और संयत करके) तो मैं कह रहा था कि प्रांत में मैं ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसने उस अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन किया जो घरों और स्कूलों में छोटे छोटे बच्चों पर तोड़ा जाता है और फिर वह मैं ही हूँ, जिसने पाठशालाओं में शारीरिक दंड को तत्काल बन्द कर देने पर जोर दिया । दूसरे अत्याचार-पीड़ित लोग, घरों में काम करने वाले भोले-भाले निरीह-नौकर हैं, जो क्रूर मालिकों के जुल्म का शिकार बनते हैं । इस अत्याचार और अन्याय को जड़ से उखाड़ने के हेतु मैंने नौकर-यूनियन स्थापित की । इसके अतिरिक्त ब्राह्मण होते हुए भी मैंने हरिजनों का पक्ष लिया, उसके स्वत्वों की, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए मैंने दिन-रात एक कर दिया है और अब भी यदि परमात्मा ने चाहा और यदि मैं धारा-सभा में गया तो . . . . .

(दरवाजा खुलता है ।)

रामलखन . (दरवाजे मे झाँककर) बाबू जी जमादारिन . . . . .

श्री० सेठ (टेलीफोन पर बात जारी रखते हुए) मैं वहाँ भी हरिजनों की सेवा करूँगा । आप अपनी हरिजन-सभा में इस बात की घोषणा कर दें ।

रामलखन (जरा अन्दर आकर) बाबू जी. . .

श्री० सेठ . (क्रोध मे) ठहर पाजी, (टेलीफोन में) नहीं नहीं, मैं नौकर से कह रहा था (खिसियाने से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप घोषित

कर दूँ कि मै असेम्बली में हरिजनो के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक में प्रोपेगेंडा करें ।......हैं.. क्या ?.....अच्छा अच्छा.....मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा । क्या करूँ अवकाश नहीं मिलता.... हिं हिं ... हिं हिं..... (हँसते है) अच्छा नमस्कार ।

(टेलीफोन का चोंगा रख देते है ।)

: (नौकर से) तुझे तो कहा था, इधर मत आना ।

रामलखन : आप ई तो कहे रहे कि कऊ आये तो इत्तला कर देई मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी मागत.....

श्री० सेठ : (गुस्से से) कह दे उससे, अगले महीने आये । मेरे पास समय नहीं । जा और किसी को मत आने दे !

भंगिन : (दरवाजे के बाहर से विनीत स्वर मे) महाराज दूधो नहाओ, पूतों फलो । दो महीने हो गये हैं ।

श्री० सेठ : कह जो दिया, फिर आना । जाओ । अब समय नहीं ।

(भगवती प्रवेश करता है)

भगवती : जयराम जी की बाबू जी ।

श्री० सेठ : तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती : बाबूजी, हमारा हिसाब कर दो ।

श्री० सेठ : (बेपरवाही से) तुम देखते हो, आज-कल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता । कुछ दिन ठहर जाओ ।

भगवती : बाबू जी, अब एक घड़ी भी नहीं ठहर सकते । आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिए ।

श्री० सेठ : (जरा ऊँचे स्वर मे) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ । यहाँ

अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब हिसाब चिल्ला रहे हो।

भगवती : जब आपकी नौकरी करते हैं तो खाने के लिए और कहाँ माँगने जायें ?

ओ० सेठ : अभी चार दिन हुये, दो रुपये ले गये थे।

भगवती : वे कहाँ रहे ? एक तो मार्ग में बनिये की भेंट हो गया। दूसरे से मुश्किल से आज तक काम चला है।

ओ० सेठ : (जेब से रुपया निकालकर फर्श पर फेंकते हुए) तो लो। अभी यह एक रुपया ले जाओ।

भगवती . नहीं बाबू जी, एक एक नहीं। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिए। वेतन मिले तीन तीन महीने हो गये हैं। एक-एक, दो-दो से कितने दिन काम चलेगा ? हमारे भी आखिर बीवी-बच्चे हैं, उन्हें भी खाने-ओढने को चाहिए। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना खर्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने .. ..

ओ० सेठ : (क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो ! कह जो दिया, अभी यह ले जाओ, बाकी फिर ले जाना।

भगवती . हम तो आज ही सब लेकर जायेंगे।

ओ० सेठ : (उठकर, और भी क्रोध से) क्या कहा ! आज ही लोगे। अभी लोगे ! जा। नहीं देते। एक कौडी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामखोर, सूअर ! आज तक, सब्जी में, दाल में, सौदा-सुलुफ मे, यहाँ तक कि बाजार से आने वाली हर एक चीज में पैसे रखता रहा, हमने कभी कुछ न कहा और अब यों अकडता है। जा। निकल जा। जाकर अदालत में मामला चला दे। चोरी के अपराध में छै महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो नाम नहीं।

भगवती : सच है बाबू जी, गरीब लाख ईमानदार हो तो भी चोर है, डाकू है और अमीर यदि आँखों में धूल झोंककर हजारों पर हाथ साफ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्रों ....!

श्री० सेठ : (क्रोध से पागल होकर) तू जायगा या नहीं, (नौकर को आवाज़ देते है) रामलखन, रामलखन !

रामलखन : जी बाबू जी, जी बाबू जी !

(भागता हुआ भीतर आता है।)

श्री० सेठ : इसको बाहर निकाल दो।

रामलखन : (भगवती के बलिष्ठ, चौड़े चकले शरीर को नख से शिख तक देख कर) ई को बाहर निकारि दें, ई हम सों कब निकसत, ई तो हमें निकारि दे ...

श्री० सेठ : (बाजू से रामलखन को परे हटाकर) हट, तुझसे क्या होगा ? (भगवती को पकड़कर पीटते हुए बाहर निकालते हैं।)

निकालो, निकालो।

भगवती मार लें और मार ले। हमारे चार पैसे रखकर आप लखपती न हो जायँगे।

[श्री० सेठ उसे बाहर निकालकर जोर से दरवाज़ा बन्दकर देते हैं।]

श्री० सेठ . (रामलखन से) तुम यहाँ क्या देख रहे हो ? निकलो।

[रामलखन डर कर निकल जाता है। श्री० सेठ तख्त पर लेट जाते हैं।]

: मूर्ख, नामाकूल !

[फिर उठकर पनारे में इधर उधर घूमते हैं, फिर

सीटी बजाते हैं और घूमते है, फिर नौकर को आवाज़ देते हैं।]

रामलखन, रामलखन !

रामलखन : (बाहर से) आये रहे बाबू जी !

(प्रवेश करता है।)

श्री० सेठ : समाचार-पत्र अभी आया है कि नहीं।

रामलखन : आ गया बाबू जी, बड़े काका पढ़ि रहन, अभी लाये देत।

श्री० सेठ . पहले इधर क्यों नहीं लाया ? कितनी बार तुझे कहा है, अखबार पहले इधर लाया कर। ला भाग कर।

(रामलखन भागता हुआ जाता है।)

श्री० सेठ : (घूमते हुए अपने आप) मेरा वक्तव्य कितना जोरदार था, छात्रों में हलचल मच गयी होगी, सब की सहानुभूति मेरे साथ हो जायगी।

[टेलीफोन की घंटी बजती है। श्री० सेठ जल्दी से चोंगा उठाते है।]

. (टेलीफोन पर, धीरे से) हेलो ! (जरा ऊँचे) हेलो ! . कौन साहब ?..मन्त्री होजरी-यूनियन ! अच्छा अच्छा, नमस्कार, नमस्कार। हिं हि .. हिं हिं .. सुनाइए, आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है ? ... क्या ? ...सब मेरे पक्ष मे वोट देने को तैयार हैं। मै कृतज्ञ हूँ। मै आप का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ .. .

... इस ओर से आप बिलकुल निश्चिन्त रहे। मैं उन लोगों में से नहीं जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरी चुनाव-सम्बन्धी घोषणा नहीं पढ़ी। मै असेम्बली में जाते ही मजदूरों की

अवस्था सुधारने का प्रयास करूँगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगो के सम्बन्ध में विशेष बिल धारासभा में पेश करूँगा।......

....क्या? हाँ. हाँ, इस ओर से भी मैं बेपरवाह नहीं। मै जानता हूँ, इस सिलसिले में श्रम-जीवियो को किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूँजी-पति ग़रीब मज़दूरों के कई-कई महीनो के वेतन रोककर उन्हें भूखों मरने पर विवश कर देते हैं, स्वय मोटरों में सैर करते हैं, शानदार होटलों में खाना खाते है, और जब ये गरीब दिन-रात परिश्रम करने के बाद—लोहू पानी एक कर देने के बाद, अपनी मज़दूरी माँगते हैं तब उन्हें हाथ तंग होने का, कारोबार में हानि होने का अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बनाकर टाल देते हैं। मै असेम्बली में जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे में मज़दूरों की सब शिकायते सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगों ने गरीब श्रमिकों के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रक्खे हो उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हे दड दिया जाय। ... हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहों आने ठीक है। मै असेम्बली में इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में ४२ घटे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अन्तर ही होना चाहिए। तेरह तेरह घंटे की ड्यूटी! भला काम की कुछ हद भी है।"

[धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं पतले-दुबले से, आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका का रोग है।
धीरे से दरवाजा बन्द करके खडे रहते है।]

श्री० सेठ : (सम्पादक से) आप बैठिये (टेलीफोन पर) ये हमारे सम्पादक महोदय आये हैं। अच्छा तो फिर सन्ध्या को आप की सभा हो रही है। मैं आने का प्रयास करूँगा। और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार!

(चोंगा रख देते हैं)

: (सम्पादक से) बैठ जाइए। आप खड़े क्यों हैं!

सम्पादक : नहीं, नहीं, कोई बात नहीं।

[तकल्लुफ के साथ कौच पर बैठते हैं। रामलखन समाचार-पत्र लिए आता है।]

रामलखन : बड़े काका तो देत नहीं रहन, मुदा जबरजस्ती लेई आए!

श्री० सेठ : (समाचार-पत्र लेकर) जा, जा, बाहर बैठ!

[कुर्सी को तख्त-पोश के पास सरका कर उस पर बैठते हैं, पाँव तख्त-पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं।]

सम्पादक : मैं .... . मैं...

श्री० सेठ : (पत्र बन्द करके) हाँ, हाँ, पहले आप ही फर्माइए।

सम्पादक : (ओंठों पर जबान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी......मेरा मतलब है.... कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही हैं।

श्री० सेठ : आपको डाक्टर से परामर्श करना चाहिए था। कहिए डाक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ।

सम्पादक : नहीं, यह बात नहीं, (थूक निगल कर) बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं सहन कर सकतीं। आप जानते हैं, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आज-कल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ। शाम को छः सात बजे जाता हूँ, फिर रात

को नौ बजे आता हूँ फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं, तीन भी बज जाते हैं।

श्री० सेठ : तो आप इतनी देर न बैठा करें। बस, जल्दी काम निबटा दिया... ।

सम्पादक मैं तो लाख चाहता हूँ, पर जल्दी कैसे निबट सकता है? एक मैं हूँ और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं, न ठीक लेख लिख सकते हैं, और पत्र बड़े बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर भी शायद काम जल्दी खत्म हो जाय, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज. ...

श्री० सेठ : हाँ, हाँ, समाचार तो रहना चाहिये।

सम्पादक : और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट का भी प्रतिक्षा करनी होती है। उन्हें ठीक करते-कराते डेढ़ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते हैं?

श्री० सेठ : (बेज़ारी से) तो आखिर आप चाहते क्या हैं?

सम्पादक मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है। इससे..

श्री० सेठ : मैं आप से पहले भी कह चुका हूँ, यह असम्भव है, बिलकुल असम्भव है। पत्र कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा है। इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है? अगले महीने पाँच रुपये मैं आप के बढ़ा दूँगा।

सम्पादक : मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घंटे काम कर सकती हैं?

श्री० सेठ : कैसी मूर्खों की बातें करते हो जी। छः महीने में पाँच रुपया

वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। यों आप काम छोड़ना चाहें तो शौक़ से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जायँगे, परन्तु ..

(रामलखन भीतर आता है।)

रामलखन : बाहर द्वि लड़िका आप से मिलना चाहत रहन।

श्री० सेठ : कौन हैं ?

रामलखन : कोई सकटडी कहे रहन .....

श्री० सेठ : जाओ, बुला लाओ। (सम्पादक से) आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है, उसका कालेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक : (मुँह फुलाये हुए) अवश्य पड़ा होगा।

श्री० सेठ : मैंने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र संघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं, मैंने उन सब का समर्थन किया है।

[दो लड़के प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रक्खी है, दूसरे के गले खुले कालर की कमीज़ है।]

दोनों : नमस्ते।

श्री० सेठ : नमस्ते ?

(दोनों कौच पर बैठते हैं।)

श्री० सेठ : कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

खुले कालर वाला : हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

श्री० सेठ : आपने उसे कैसा पसन्द किया ?

वही लड़का : छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है। बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

श्री० सेठ : आपके मित्र किधर वोट दे रहे हैं ?

वही लड़का : कल तक तो कुछ न पूछिए, लेकिन मैं आपको निश्चय दिलाता हूँ कि आज ७५ प्रतिशत आपकी ओर हो गये हैं। अभी हमारी सभा हुई थी। छात्रों का बहुमत आपकी ओर था।

श्री० सेठ : (प्रसन्नता से) और मैंने गलत ही क्या लिखा है ? जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे ! युवकों को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफार्म से खौफ न खाये, सुधारों से कभी न कतराये।

वही लड़का : हम अपने कालेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे। परन्तु कालेज के सर्व-सर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

श्री० सेठ : आपको प्रोटेस्ट *करना चाहिये था।

वही लड़का : हमने हड़ताल कर दी है।

श्री० सेठ : आपने क्या माँगें पेश की हैं ?

वही लड़का : हम वर्तमान प्रिंसिपल नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है। कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमान-जनक है।

श्री० सेठ : (कुछ उत्साह हीन होकर) तो आप क्या चाहते हैं ?

* विरोध

दोनों : हम योग्य प्रिंसिपल चाहते हैं।

श्री० सेठ : (गिरी हुई आवाज़ मे), आपकी मॉग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले कोई वैधानिक रीति प्रयोग में लाते प्रबन्धकों से मिल-जुलकर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का : हम सब कुछ करके देख चुके हैं।

श्री० सेठ : हूँ !

टाई वाला लड़का : बात यह है जनाब कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असन्तोष प्रकट करते आ रहे हैं। व्यवस्थापकों ने भी परवाह नहीं की। कई बार आवेदन-पत्र कालेज की प्रबन्धक-कमेटी के पास भेजे गये, पर कमेटी के कानों पर जूँ तक भी नहीं रेंगी। हार कर हमने हड़ताल कर दी है। कठिनाई यह है कि कमेटी काफी मजबूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराये जा रहे हैं, और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है। इसी लिए हम आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं।

श्री० सेठ : (अन्यमनस्कता से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं, आप कल दफ्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। ये जितना उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनों : (उठते हुए) जी बहुत अच्छा, कल हम सम्पादक जी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार।

श्री० सेठ और सम्पादक : नमस्कार।

(दोनों का प्रस्थान)

श्री० सेठ : (सम्पादक से) यदि कल ये आये तो इनका वक्तव्य कदापि

न छापिए। प्रिंसिपल हमारे कृपालु हैं और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र!

सम्पादक: (मुँह फुलाये हुए) बहुत अच्छा।

श्री० सेठ: आप घबरायें नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो कौन सी आफत आ गयी। जब मैंने पत्र आरम्भ किया था मैं चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घंटे काम किया करता था। यह महीना आप किसी न किसी तरह निकालिए, चुनाव हो ले, फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक: (दीर्घ निःश्वास छोड़कर) बहुत अच्छा (मुँह फुलाकर) नमस्कार!

[श्री० सेठ केवल सिर हिलाते हैं। सम्पादक महोदय चले जाते हैं श्री० सेठ फिर समाचार-पत्र पढ़ना आरम्भ करते हैं। दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है और बलराम का बाजू थामे श्रीमती सेठ बगूले की भाँति प्रवेश करती हैं।]

श्रीमती सेठ: मैं कहती हूँ, आप बच्चों से कभी प्यार करना भी सीखेंगे। जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते नज़र आते हो, जैसे बच्चे अपने न हों, पराये हों। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

श्री० सेठ: (पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हें कभी बात करने का सलीका भी आयगा। जाओ इस समय मेरे पास समय नहीं है।

श्रीमती सेठ: आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी समय होता भी है? मारने और पीटने के लिए जाने कहाँ से वक्त निकल आता है? इतनी देर से ढूँढ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था,

बीसों आवाजें दीं, घर का कोना कोना छान मारा। जाकर देखा कि भूसे की कोठरी में बैठा सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गयी थी ?

श्री० सेठ : (क्रोध से पत्र को तख्त पर पटक कर) क्या बके जा रही हो ? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभाल कर रक्खा करो, आ जाते हैं सुबह दिमाग चाटने !

[श्रीमती सेठ बच्चे के दो थप्पड़ लगाती , बच्चा रोता है।]

श्रीमती सेठ : (बच्चे को पीटते हुए) तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर। ये बाप नहीं, दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उन के सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के लिए भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द जबान पर न लायेंगे।

(बच्चे के एक और चपत लगाती है।)

: तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती (आवाज़ ऊँची होते होते रोने की हद को पहुँच जाती है)। स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यों आया यहाँ मार खाने, कान तुड़वाने ?

श्री० सेठ : (क्रोध से पागल होकर, पत्नी को धकेलते हुए) मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो। यहाँ इस कमरे में आकर क्यों शोर मचा दिया ? अभी कोई आ जाय तो क्या हो ? कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अन्दर जाकर बैठा करो।

श्रीमती सेठ : (तुनक कर खड़ी हो जाती है) आप कभी घर के अन्दर आये भी। आप के लिए तो जैसे घर के अन्दर आना पाप करने के बराबर है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफ़ोन सिरहाने रख कर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालों का ताँता लगा रहे। न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहें ?

श्री० सेठ : कौन-सा मैंने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गयी ? ज़रा सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

श्रीमती सेठ : सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालिए। कहो तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूँ।

(उन्मादियों की भाँति बच्चे का सिर पकड़कर तख़्त पर मारती है। श्री० सेठ उसे तड़ातड़ पीटते हैं।]

श्री० सेठ : मैं कहता हूँ, तुम पागल हो गयी हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जाकर मारो, पीटना है तो उधर जाकर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जाकर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बक-झक से तंग आकर मैं इधर एकान्त में आ गया हूँ। अब यहाँ आकर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है। क्या चाहती हो ? यहाँ से भी चला जाऊँ ?

श्रीमती सेठ : (रोते हुए) आप क्यों चले जायँ ? हम ही चली जायँगी! (भर्राई हुई आवाज़ में नौकर को आवाज़ देती है) रामलखन, रामलखन !

रामलखन जी बीबी जी।

(प्रवेश करता है)

श्रीमती सेठ · जाओ। जाकर ताँगा ले आओ। मै पीहर जाऊँगी।

' [तेजी से बच्चे को लेकर चली जाती है। दरवाज़ा ज़ोर से बन्द होता है]

श्री० सेठ : मूर्ख।

[आराम कुर्सी पर बैठ कर टाँगे तख़्त-पोश पर रख लेते हैं और पीछे को लेटकर अख़बार पढ़ने लगते हैं। टेलीफोन की घंटी बजती है।]

श्री० सेठ · (वहीं से चोंगा उठाकर कर्कश स्वर में) हेलो ! हेलो '... .. नहीं, यह ३८१२ है, ग़लत नम्बर है।

(बेज़ारी से चोंगा रख देते हैं।)

: ईडियट्स*

(टेलीफोन की घंटी फिर बजती है)

: (और भी कर्कश स्वर में) हेलो ' हेलो '..... कौन ? श्रीमती सरला देवी ! (उठ कर बैठते हैं। चेहरे पर मृदुलता और स्वर में माधुर्य आ जाता है) माफ कीजिएगा, मैं जरा परेशान हूँ। सुनाइए तबीअत तो ठीक है ? . . .(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) मैं आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइए आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है ? मैं भी कुछ आशा रक्खूँ या नहीं .... मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूँ। आप निश्चय रखें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझसे अच्छा रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नजर न आयेगा। . . . .

(पर्दा गिरता है)

सरस्वती १९३८

* मूर्ख।

विवाह के दिन

(सामाजिक व्यंग्य)

पात्र

परसराम

पिता

मा

लीला

विजय

बलवन्त

स्थान--

होशियारपुर में मध्यम श्रेणी का एक मकान

[पर्दा इसी मकान के एक दालान में उठता है।

दालान में एक बड़े, कदाचित दहेज में आये हुए, सन्दूक के अतिरिक्त और कुछ नहीं। दीवारों पर पुरानी तर्ज के एक-दो धार्मिक चित्र लगे हैं, जिनमें लक्ष्मी की तस्वीर साफ़ दिखायी देती है। इसके नीचे एक आलमारी है, जिसके पट इस समय बन्द हैं।

आलमारी के दोनों ओर खूंटियाँ हैं, जिनमें से एक पर कागज़ का सेहरा टँगा है और दूसरी पर कागज़ का तीर कमान। (दोनों चीजें कदाचित नेगियों द्वारा लायी गयी हैं।)

सामने की दीवार के दायें कोने में खिड़की है, जिसकी कुंडी पुरानी होकर बेकार हो चुकी है और रौग़न काला पड़ गया है।

बायीं दीवार में एक दरवाज़ा है, जो सामान की कोठरी में खुलता है। दालान का शेष सब सामान भी शायद उसी कोठरी में पहुँच चुका है क्योंकि वहाँ इस समय केवल एक दरी बिछी है, जिसकी सिलवटें साफ़ दिखायी दे रही हैं।

नीचे कहीं आँगन से स्त्रियों के गाने की आवाज़ आ रही है,

जिस पर कभी-कभी छा जाने वाली, बाहर मुहल्ले में बजनेवाले बाजों की ध्वनि भी कमरे में आ जाती है।

पर्दा उठने के एक दो क्षण बाद बायीं ओर सामान की कोठरी से विजय निकलता है, दायीं ओर से मा प्रवेश करती है दोनो घबराये हुए हैं। विजय के पाँव नगे हैं और वह पायजामा और कमीज पहने है। मा नाक में बड़ी, सम्हाले न सम्हलनेवाली शिकापुरी नत्थ, सिर पर लाल सालू, गले में रेशमी कमीज, और कमर में झिलमिलाती सुत्थनी पहने है।

दालान के मध्य दोनो एक क्षण के लिए रुकते हैं।]

मा · किधर है ?

विजय · कोठरी में।

मा : क्या बात है ?

विजय . रोये जा रहे हैं, बस !

[मा जल्दी-जल्दी कोठरी में चली जाती है। बाहर के दरवाजे से पिता प्रवेश करते हैं सिर पर पगड़ी, गोल भरा चेहरा, श्याम वर्ण, बड़ी-बड़ी श्वेत मूछें, कद की अपेक्षा मोटा शरीर कमीज, शलवार पहने।]

पिता · क्या बात है ?

विजय : (कोठरी की ओर इशारा करके) अन्दर हैं।

[पिता जल्दी जल्दी कोठरी की ओर जाते हैं। फिर मुड़ते हैं और विजय से कहते है।]

· जरा बलवन्त को भेजो।

[कोठरी में चले जाते है। विजय भागता-सा बाहर की ओर जाता है।

कुछ क्षण कमरे में मौन रहता है, केवल नीचे से स्त्रियों के गाने की आवाज़ आती है। बाहर बाजे जोर-जोर से बज उठते हैं और हवा का जोर होने से खिड़की के पट खटखटाते हैं, और वह खुलने-खुलने को होती है।

फिर बलवन्त जल्दी-जल्दी प्रवेश करता है। केवल पतलून और कमीज़ पहने और जल्दी-जल्दी कोठरी में चला जाता है।

तब विजय प्रवेश करता है। कोठरी के दरवाज़े से कान लगाकर सुनता है और फिर अचानक पलटकर व्यस्त होता हुआ फर्श पर बिछी दरी की सिलवटें ठीक करने लग जाता है।

कोठरी से मा-बाप परसराम को दोनों हाथों से पकड़े आते हैं, पीछे-पीछे बलवन्त है।

परसराम की आँखें रोने से सुर्ख हैं और वह इन्हें कन्धों से पोंछता आ रहा है।]

पिता : परसराम, पागल न बनो।

मा : बच्चा, मै तो लाज से मरी जा रही हूँ। घर में बहू आयी है और तुम इधर कोठरी में बच्चो की भाँति सिसक रहे हो।

पिता : आखिर कुछ बताओ भी कि बात क्या है? मुझे बाहर सौ काम करने हैं, इतने अतिथि आये हुए हैं, बाजेवाले आये हुए हैं, नट आये हुए हैं और फिर सामान अभी लारी में ही है और रस्में......

(परसराम जोर-से रो पड़ता है।)

पिता : (अपनी पत्नी और बलवन्त से) तुम इससे जरा पूछो। मै बाहर जाता हूँ (बेज़ारी से सिर हिलाते हैं) पागल !...

मा : परसराम !

बलवन्त : परसराम !

(परसराम सिर उठाता है, आस्तीन से आंखें पोंछता है।)

मा : बैठो।

[परसराम वहीं सन्दूक के कोने पर बैठ जाता है। अचानक खिड़की का पट जोर से खुलता है। सेहरा सरसराता है, और तीर-कमान डोलता है।]

बलवन्त : विजय !

(विजय बढ़कर खिड़की बन्द कर देता है।)

मा : (परसराम से, आर्द्र स्वर में) कहो न क्या बात है ?

परसराम : तुम लोगों ने मेरा सारा जीवन नष्ट कर दिया है।

मा : क्यों बच्चा, आज तो खुशी का दिन है, घर में लक्ष्मी आयी है, तू कैसी बातें करता है ?

बलवन्त : वाह जीवन नष्ट कर दिया है, मियाँ कवारों का जीवन भी कोई जीवन है, न घड़े पानी, न चूल्हे आग, पत्नी .. ..

(स्वयं ही खोखला ठहाका लगाता है।)

परसराम : मैं ऐसी पत्नी नहीं चाहता।

(मा और बलवन्त एकटक उसी ओर देखते हैं।)

(विनय भी दरी की सिलवटें ठीक करना छोड़ देता है।)

परसराम : कह दिया, मैं ऐसी पत्नी नहीं चाहता, तुम लोगों ने मेरे साथ धोखा किया है। मेरे गले में एक फूहड़, कुरूप, अल्हड़ लड़की बाँध दी है। मेरी जिन्दगी बर्बाद कर दी है। मैं बम्बई चला जाऊँगा, उसका मुँह तक न देखूँगा।

मा : बेटा !

(आँखों में आँसू छलछला आते हैं।)

परसराम (उसकी ओर देखता है।) तुमने इसी तरह रो-रोकर मेरे रास्ते में काँटे बोये हैं। मैं तुम्हारे इन आँसुओं को क्या करूँ, कहाँ तक देखूँ ?

मा : (दुपट्टे से आँसू पोंछते हुए) बेटा, कैसी बच्चों की-सी बातें कर रहे हो। नीचे आँगन में बिरादरी की स्त्रियाँ इकट्ठी हो रही हैं। अभी कई रस्में होनी हैं और तुम इधर रो रहे हो, कहो तो सही, उसमें दोष क्या है ?

परसराम : तुम यह बताओ, उसमें गुण कौन-सा है ?

मा : सीधी-साधी भोली-भाली लड़की है, खाना पकाना जानती है, सीना-पिरोना जानती है, तुमने उसके हाथ का किरोशिये का काम नहीं देखा। मुहल्ले की लड़कियाँ प्रशंसा करते नहीं थकतीं।

परसराम : क्या पत्नी केवल खाना बनाने, सीने-पिरोने, किरोशिये का काम करने के लिए लायी जाती है ?

[दोनों निरन्तर उसके मुँह की ओर देखते हैं, आख़िर बलवन्त की दृष्टि विजय पर पड़ती है जो दत्तचित्त होकर सब बातें सुन रहा है और दरी की सिलवटें निकालना भूल गया है। बलवन्त उसे इशारा करता है कि वह जाय और मा परसराम से पूछती है।]

मा : आखिर तुम चाहते क्या हो ?

परसराम : मैं चाहता हूँ, तुम मुझे छोड़ दो, मुझे जी भरकर रो लेने दो। मेरे जीवन का महल मेरे देखते-देखते धरती पर आ रहे और उसके विध्वंस पर क्षण भर रोऊँ भी नहीं !

मा : राम-राम बच्चा, कैसी बातें करते हो ?

[परसराम पीछे को लेटकर दीवार के साथ पीठ लगा देता है। बाहर से नायन की मीठी, बारीक, सानुनासिक आवाज़ आती है।]

: बहूरानी, नीचे सब तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं, मुँह दिखायी अभी होनी है।

मा : (भर्राए हुए स्वर मे बलवन्त से) बच्चा, तुम इसे समझाओ ! मैं अभी आयी।

(दुपट्टे से आखें पोंछती हुई चली जाती है।

बलवन्त : आखिर तुम पर यह क्या पागलपन सवार हो गया है ?

परसराम : पागलपन सवार हो गया है, मै रोऊँ भी न अपनी तबाही पर !

बलवन्त : लेकिन अब रोने से क्या लाभ ! ये आँसू पहले बहते तो कुछ बात भी थी।

परसराम : तुम नहीं जानते, मै आरम्भ में कितना चिल्लाया, पर इन लोगों ने मेरी एक पेश न जाने दी। मैं बम्बई जाना चाहता था। तुम स्वयं जानते हो कि सिनेमा में मेरे लिए कितना स्कोप* है। एक दो साल मे कहीं से कहीं पहुँच सकता हूँ। इन लोगों ने मेरी समस्त आकांक्षाओं का गला घोंट दिया। मा ने रोकर, आँसू बहा कर, पिताजी ने कोस कर, डॉट कर, चचा ने अपनी नाक का वास्ता दिला कर और न जाने कैसी बातें करके मुझे शादी करने पर विवश कर दिया।

बलवन्त : परन्तु .....

परसराम : और फिर जबरदस्ती देखो, मुझे पत्नी को देखने तक की

*Scope=क्षेत्र

आज्ञा न दी गयी। मैंने कहा—मैं लड़की को देखूँगा। सबने कानों पर हाथ धर लिये। माँ बहू को देखने गयीं और आकर बहू की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर दिये (मुँह बनाकर नकल उतारते हुए) 'बहू क्या है, देवी है, दिन-रात काम करती है, सीना-पिरोना खूब जानती है, खाना बनाने में निपुण है, सुबह उठकर नियमित रूप से संध्या-वंदन में मन लगाती है।' मैं पूछता—वह है कैसी ? मा कहतीं कैसी होगी, अच्छी है। इस 'अच्छी है' पर मेरा माथा ठनका था। मैं फिर पूछता गाना-बाना जानती है ? मा कहतीं सुनते हैं जानती है, हारमोनियम वे दहेज में दे रहे हैं। अब मेरे सामने तबला लेकर तो बैठी नहीं...

(बलवन्त ठहाका लगाता है।)

परसराम : तुम हँसते हो, मैं जी भर रो लेना चाहता हूँ। तुम देखो, इन लोगों की मूर्खता के कारण मेरा सारा जीवन नष्ट हो रहा है। इन लोगों को कौन समझाये कि पत्नी का काम केवल सीना-पिरोना और दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह काम करना नहीं। उसके लिए पति की संगिनि होना आवश्यक है। दोनों की रुचियाँ एक होनी चाहिएँ, नहीं जीवन दूभर होकर रह जाता है—मैं भैरवी अलापूँगा, वह कपड़ों पर धप-धप करेगी, मैं गीत गाऊँगा, वह बर्तनों की छनाछन से नाक में दम कर देगी, मैं अपने लिखे सभाषण सुनाना चाहूँगा, वह 'अभी सफाई करनी है,' 'अभी कपड़े सीने हैं,' 'अभी......

(बलवन्त ठहाका मारता है।)

परसराम : मैं इस दाम्पत्य-जीवन की कल्पना करता हूँ तो मेरी रूह फना हो जाती है। किसी फूहड़, अशिक्षित और कुरूप लड़की से किस प्रकार एक कलाकार का निर्वाह हो सकता है !

बलवन्त : किन्तु कौन जाने, उसमें ये गुण किसी न किसी हद तक हों।

परसराम : खाक होंगे, मैंने अभी उसकी एक झलक देखी है, उसमें और सब कुछ हो सकता है, ये गुण नहीं हो सकते। उसके काले हाथ पर चेचक की निशान मैंने साफ देखा फूहड़, गँवार, चेचक-रू—मैं बम्बई भाग जाऊँगा।

(पिता प्रवेश करते हैं।)

पिता : तुम अभी तक यहीं बैठे हो। उधर अभी कंगना होना है। उठो, पहले सब रस्में पूरी कर लो, फिर चाहे जो करना, जी चाहे जितना रो लेना। आँगन में सब बिरादरी की स्त्रियाँ आयी हुई हैं, इस तरह हमारी खिल्ली तो न उड़वाओ।

परसराम : मैं......

पिता : मैंने सब कुछ सुन लिया है, तुम सिर्फ पागल हो। इस समय चलो, मैं अभी फिर तुमसे बातें करूँगा।

[हाथ थामकर परसराम को खींचते हुए ले जाते हैं। बलवन्त, चुपचाप सन्दूक का सहारा लिये खड़ा सोचता है। कुछ क्षण बाद फिर पिता प्रवेश करते हैं।]

पिता : मैं कहता हूँ, तुम जरा लीला से पूछना कि वहू क्या वास्तव में ही इतनी बुरी है। और उसे समझाना। देखो यह वंश की मान-प्रतिष्ठा का प्रश्न है। मैंने तुम्हें सदैव अपने बेटे की तरह समझा है। तुम्हारे पिता हरभगवान मेरे घनिष्ट मित्र थे।

[बलवन्त के कंधे को प्यार से थपथपाकर चले जाते हैं और 'मैं भरसक प्रयत्न करूँगा' बलवन्त के ये शब्द नहीं सुनते और 'मैं लीला को भेजता हूँ' यह कहते हुए दरवाजों से निकल जाते हैं।]

बलवन्त : (सन्दूक पर बैठ कर शून्य में देखता हुआ) कहता था, इसका ब्याह न करो, यह अभी ब्याह के योग्य नहीं। कच्चे घड़े को पानी में छोड़ दोगे तो वह पार न हो सकेगा, किन्तु कोई नहीं माना....

[लीला तेज़ी से प्रवेश करती है। भाई के विवाह के कारण अच्छे भड़कीले कपड़ों में आवृत्त है, भरी जवानी भरा गोरा पर गम्भीर मुख। दो ही वर्ष पहले उसका विवाह हुआ है, किन्तु वह सफल है या असफल, यह बात उसकी आकृति से ज्ञान लेना कठिन है।]

लीला : कहो क्या बात है ? मुझे जल्दी जाना है।

बलवन्त : (धीरे से) देखी, कैसी है भाभी ?

लीला : (मुस्कराकर) अच्छी है।।

बलवन्त : (आगे बढ़कर और भी धीरे से) अच्छी कैसी है ?

लीला : (हंसकर) तुम्हे अभी से ईर्षा क्यों होने लगी, तुम्हारे लिए कम सुन्दर पत्नी न चुनी जायगी।

बलवन्त : (उसकी हंसी में योग न देकर) यह बात नहीं, तुम्हारे भाई ने तुम्हारी इसी नयी भाभी को पसन्द नहीं किया।

लीला : पर वह तो ऐसी बुरी नहीं।

बलवन्त : तभी तो पूछता हूँ कि कैसी है ?

लीला : रंग जरा साँवला है, पर नक्श नयन तीखे हैं, सुन्दर हैं, बड़ी बड़ी आँखें ......

बलवन्त : पढ़ी-लिखी हैं।

लीला : ख्याल तो ऐसा ही है।

बलवन्त : और चेचक .....

लीला : (तनिक चिढ़कर) क्या मतलब है तुम्हारा ?

वलवन्त : चेहरे पर चेचक के दाग तो नहीं।

लीला : बिलकुल नहीं, मक्खन की तरह मुलायम है चेहरा मेरी भाभी का। तुम लोगों को जाने क्या भ्रम हो गया है ?

वलवन्त : (हँसकर) मुझे नहीं, भ्रम तुम्हारे भाई को हुआ है। पर अब एक बात करो, किसी न किसी तरह उसे भाभी को दिखाने का प्रबन्ध कर दो।

लीला : (आश्चर्य से) आज ही, पागल हो गये हो !

वलवन्त : मैं कहता हूँ, तुम लोगों को प्रबन्ध करना होगा, नहीं वह भाग जायगा।

लीला : (एक पग पीछे हटकर) भाग जायगा।

[खट से खिड़की के पट खुल जाते हैं, सेहरा हिलता है और तीर-कमान डोलता है।]

वलवन्त : (खिड़की बन्द करता हुआ) हाँ, भाग जायगा। न जाने उसे कैसे भ्रम हो गया है कि उसकी पत्नी अत्यन्त कुरूप है और वह कहता है- इन लोगों ने मेरा जीवन नष्ट कर दिया है। तुम्हें आज ही वहू को उसे दिखाना होगा।

लीला . मै जतन करूँगी।

[सोचती हुई पहले धीरे, धीरे और फिर तेज तेज चली जाती है। पिता प्रवेश करते हैं।]

पिता : तुमने पूछा लड़कियाँ क्या कहती हैं ?

वलवन्त . रग तनिक साँवला है, पर नक्श-नेयन सुन्दर हैं, वड़ी-वड़ी आंखें......

पिता : फिर तुम्हीं कहो यह पागलपन नहीं तो क्या है ? (हाथ उसके कंधो

पर रखते हुए, धीरे से) बात कहने की नहीं, किन्तु परसराम की मा कितनी सुन्दर है, तो क्या हमारा जीवन सुख से नहीं बीता ?

बलवन्त : आन्तरिक सुन्दरता होनी चाहिए, बाह्य सौन्दर्य हुआ तो क्या ?

पिता : मुझे कहने से क्या लाभ, उसे समझाओ तो बात है।

बलवन्त : उसे कहीं भ्रम हो गया है, मेरे विचार में आप आज उसे अपनी पत्नी को देख लेने दें, सब कुछ ठीक हो जायगा।

पिता : तुम स्वयं समझदार हो, यह कैसे हो सकता है ?

बलवन्त : अब अवसर आ पड़ा है तो सब कुछ करना ही पड़ेगा। वह भावुक और हठी आदमी है। भावुकता की धुन में न जाने क्या कर बैठे ! अभी कह रहा था मैं बम्बई भाग जाऊँगा और आप जानते हैं, वह भाग सकता है।

पिता : (भृकुटी तन जाती है। हाथ नीचे आ जाते हैं।) मेरी नाक काट-कर जाने से पहले मैं उसकी टाँगे न तोड़ दूँगा।

बलवन्त : टाँगे तोड़ने से नाक तो न बचेगी।

[पिता भारी पग धरते हुए और भारी उपेक्षा से एक-दो बार 'मूर्ख' और 'पागल' कहते हुए कमरे में घूमते हैं।]

बलवन्त : आप मेरी बात मानें, किसी न किसी तरह उसे आज ही बहू को देख लेने दें। निराशातिरेक समाप्त हो जाय, वह कुछ शान्त हो तो उसे समझाने का प्रयत्न करें।

पिता : (रुककर) तुम . तुम उसकी मा से कहो।

बलवन्त : मैंने लीला से कहा है ....

पिता : तुमने पूछा, कुछ पढ़ी-लिखी भी है ?

बलवन्त : बहिन कहती थी खुसी पढी-लिखी है।

पिता (लगभग गर्जकर) फिर यह गधापन नहीं तो क्या है! खुशी के दिन ऐसा रोना-रुलाना!.... मूर्ख .... नालायक......

बलवन्त . उसे भ्रम.....

(बाहर से नाई की आवाज़ आती है)

आवाज़ : यजमान किधर हैं आप? उधर सौ काम......

पिता : (ऊँचे स्वर में) चलो मैं आया। (बेज़ारी से सिर हिलाते हैं) मैं किधर-किधर हो सकता हूँ? (धीरे से) तुम लीला से या उसकी मां से कहकर कुछ प्रबन्ध करो!

[तेजी से जाते हैं।

बलवन्त सन्दूक़ मे उठता है, एक-दो बार कमरे का चक्कर लगाता है, फिर तेज़ी से बाहर चला जाता है।

हवा के ज़ोर से खिडकी का पट खुल जाता है, सेहरा सरसराता है और तीर कमान डोलता है, बाहर से बाजों का शोर कान में आता है।

मा और लीला शीरीनी की एक परात थामे प्रवेश करती है। साथ-साथ बलवन्त है।

सब चलते-चलते बातें करते है।]

बलवन्त : मैं कहता हूँ, प्रबन्ध तो आपको करना ही होगा, उसके स्वभाव को आप नहीं जानते।

मा : पर आज बच्चा!.....आज .....

बलवन्त : बल्कि अभी......

(हवा के ज़ोर से शीरीनी उड़ती है)

मा : खिड़की ..

(बलवन्त बढ़कर खिड़की बन्द करता है।)

लीला : मैं कहती हूँ मा, दिखा क्यों न दो।

मा : अभी कँगन समाप्त हुआ है, अभी मुँह दिखाई की रस्म होनी है। बाहर की स्त्रियाँ बहू के देखने के लिए आतुर हैं, फिर बहू ने अभी आराम तक नहीं किया, पानी तक नहीं पिया।

बलवन्त : (खिड़की बन्द करके आता हुआ) पानी वह आयु भर पीती रहेगी, आराम भी वह आयु भर करती रहेगी। यदि आज आप ने परसराम को शान्त न किया तो आज का आराम उसे जीवन भर काँटे की तरह खटकता रहेगा और इससे हजार गुना पानी उसे आँखों के रास्ते निकालना पड़ेगा।

[सब कोठड़ी में चले जाते हैं और कुछ क्षण बाद परात रखकर पुनः बातें करते हुए वापस आते हैं।]

मा : मैं तो लाज से मरी जा रही हूँ .. .महरी.....

लीला : महरी को मैं भेज दूँगी। वह मुझसे कह रही थी कि उसकी गाय उसके अतिरिक्त किसी और को पास फटकने देती। मैं उसे भेज दूँगी। नगर में समधियाने का यही तो सुख है......

मा : बहू......

लीला : मैं उसे स्वयं इस कमरे में छोड़ जाऊँगी।

मा : (काँपते स्वर में) मेरा दिल धक धक कर रहा है, मेरी आँखें फड़क रही हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। यह सब ठीक नहीं . मा .. लक्ष्मी .

[खिड़की का पट फिर खुल जाता है, बलवन्त बढ़कर ज़ोर से पट बंद कर देता है। सब चले जाते हैं।

कुछ क्षण कमरे में निस्तब्धता रहती है जिस में खूंटी पर टंगा हुआ तीरकमान धीरे-धीरे डोलता है और उसके पास ही एक छिपकली शायद उस पर बैठी हुई मक्खी पर झपटने के लिए बढ़ती है।

परसराम घबराया हुआ प्रवेश करता है।]

परसराम : (उन्मादियों की भाँति अपने आप ऊँचे-ऊँचे बातें करता हुआ) बस हो चुका शादी का यह तमाशा। मैं बहुत देर तक इसे सहन न कर सकूँगा। मा-बाप को एक बहू चाहिये थी, उन्हें मिल गयी, काली, गोरी, सुघड़-फूहड़ उन्हें मुबारक हो। मैं जैसी पत्नी चाहता था, वैसी वह नहीं।

(कोट उतारकर जोर से एक कोने में फेंकता है और कलगी वाली पगड़ी उतारकर उसी ज़ोर से दूसरे कोने में फेंकता है।)

—: क्या मैंने उसके हाथ नहीं देखे, क्या उसका रंग मुझसे अच्छा है और वह उसके हाथ का दाग क्या साफ 'माता*' का मालूम न होता था ! क्या मैंने उसकी आवाज नहीं सुनी, ससुराल से विदा होते समय उसने जैसी रुदन-रागिनी निकाली थी, उसे सुन कर ही मैं समझ गया था कि इस गले से और चाहे कुछ निकले, रसीली चीज एक भी नहीं निकल सकती।

[सिर को दोनों हाथों से थामे कमरे में घूमता है। खिड़की के पट खुल जाते हैं। और, हवा के ज़ोर से सेहरा उड जाने को और तीर-कमान गिर-जाने को हो जाता है और छिपकली डरकर भाग जाती है।

परसराम जोर से खिड़की बन्द करता है, इतने ज़ोर से कि छत

*पंजाब में चेचक को माता कहते हैं।

तक काँप जाती है। हूँ करके एक लकड़ी-सी उसमें अड़ा देता है, और बेज़ारी से सिर हिलाता है।]

—: सारा जीवन नष्ट कर दिया

[जाकर सन्दूक पर लेट जाता है और लटकते हुए पाँवों को ज़ोर-ज़ोर से सन्दूक के साथ मारता है लीला दरवाज़ा खोलकर चुपके से बहू को अन्दर ढकेल देती है और दरवाज़ा बन्द कर देती है। सिमटी सहमी बहू घूँघट निकाले वहीं दीवार के साथ खड़ी हो जाती है।

परसराम फिर उचककर उठता है और पागलों की तरह घूमने लगता है बहू को दीवार के साथ लगी खड़ी देखकर ठिठकता है।]

परसराम : तुम .....

[खाँसता है, उसकी ओर ,कनखियों से देखता है, फिर हँसता है। और फिर जाकर सन्दूक पर बैठ जाता है।

बहू खड़ी है, बस खड़ी है और भी सिमटी और भी सिकुड़ी।

परसराम फिर उठता है, उसके समीप जाता है, कमीज़ की आस्तीन में मुँह पोंछता है। फिर उसके और समीप जाता है।]

— : वहाँ चल कर बैठो !

(सन्दूक की ओर इशारा करता है; बहू नहीं हिलती)

: वहाँ चलकर बैठो !

[और कन्धे से थाम कर पत्नी को, सन्दूक के पास जैसे ज़बरदस्ती ले जाता है।

बहू सन्दूक के साथ लगी चुपचाप खड़ी हो जाती है।

परसराम उसे बरबस बैठा देता है। उसके साँवले हाथों को

देखता है और परेशानी से कमरे का एक चक्कर लगाता है। फिर आकर घूँघट उठाना चाहता है, वहू घूंघट पकड़ लेती है। परसराम अलमारी खोलकर एक रद्दी-सी पुस्तक निकालता है (उसके इस प्रयास में बहुत रद्दी कागज और किताबें फर्श पर बिखर जाती हैं) पुस्तक को खोल कर वहू के घूँघट के आगे रखता है।]

: तुम्हें पढ़ना आता है ?

(घूँघट थामे वहू चुप बैठी रहती है।)

: देखो मैं कैसे फर-फर पढ़ता हूँ, तुम पढ़ ही नहीं सकतीं। (ठहाका मारता है, फिर लय से) तुम पढ़ ही नहीं सकतीं। (सहसा गम्भीर होकर) देखो, साफ लिखा है--(पढ़ता है)--आम खा, चुप रह, सेव बहुत अच्छा फल है, आज हम गिल्ली-डण्डा खेलेंगे !

(फिर ठहाका मारता है, किताब को फेंक देता है।)

: (उनमादियों की भाँति) और तुम्हें गाना आता है ?

(उत्तर के लिए रुकता है, वहू चुप।)

: फिर तुम्हारी हमारी कैसे निभ सकती है ? कैसे निभ सकती है तुम्हारी हमारी ?

(लय से गाता है)

निभ सकती है कैसे तुम्हारी हमारी
हमारी तुम्हारी, तुम्हारी हमारी,।
कैसे कैसे कैसे कैसे ?

[वहू डर जाती है, उठना चाहती है, वह फिर बैठा देता है।]

--: ठहरो मैं दरबारी कानड़ा सुनाता हूँ।

(गाता है)

धन जोवन का मान न करिए।

(वहू का हाथ पकड़ता है और गाता है ।)

धन जोवन का मान...

[वहू हाथ छुड़ाती है और भाग जाती है, परसराम कमरे में घूमता है, सिर हिलाता है और गाता है

धन जोवन......

लीला घबराई हुई प्रवेश करती है ।]

लीला : परसराम, परसराम !

(परसराम उसकी ठोडी ऊपर उठाता है और गाता है

'धन जोवन का मान न करिए'

लीला : (विस्फारित आँखों से उसकी ओर देखती हुई चीखती है ।)

परसराम, परसराम .... !

(परसराम गाये जाता है ।)

लीला : (चीख की हद को पहुँची हुई आवाज़ से) परसराम, तुम्हें क्या हो गया है ?

[चीखती हुई भाग जाती है, और दूसरे पल वहू को जैसे घसीटती हुई लाती है और कमरे में लाकर उसका घूँघट उतार देती है ।]

लीला . (उसी आवाज़ में) यह देखो तुम्हारी वहू, यह असुन्दर नहीं, कुरूप नहीं, यह शिक्षित है, यह गा सकती है । तुम्हें भ्रम हो गया है, तुमने शायद महरी की लड़की को देख लिया है । आँखें खोल-कर देखो । देखो यह रो रही है ।

[परसराम आँखें फाड़ कर वहू को देखता है, और फिर इतने ज़ोर से ठहाका मार कर और दरवाज़ा खोल कर बाहर

भाग जाता है कि छत काँप जाती है। खिडकी की कुंडी में फँसी हुई लकडी गिर पडती है। पट खुल जाते हैं, हवा के तेज़ झोंके से सेहरा ज़मीन पर आ रहता है। तीर-कमान एक ख़ास कोण पर टँगा रह जाता है। और आलमारी से गिरे हुए काग़ज़ फड़फड़ाते हैं।

लीला आँखें फाड़े खडी रह जाती है, हवा से उसके सिर का पल्ला उड जाता है, बाल बिखर जाते हैं। परसराम के पीछे शून्य में देखती हुई वह आश्चर्य और क्रोध से सिर्फ इतना कहती है]

: पागल ! छः !

पर्दा

जुलाई १९४०

पहेली

झाँकी

पात्र

चेतन

आनन्द

लाजवती

मा

समय

आठ बजे सुबह,

स्थान

चेतन के घर का दालान

[दायें कोने में, सामने की दीवार में खिडकी है, जिसके साथ ही दीवार में एक छोटा-सा आगे को बढा हुआ ताक है, उसके साथ, तनिक हटकर बायीं दीवार में दरवाजा है जो आंगन में खुलता है। ताक पर लाल हलवान का छोटा-सा पर्दा दो नन्हीं-नन्हीं बरंजियों से टँगा हुआ है। ताक के नीचे दीवार पर होई माता (काली माता) बनी हुई है और इसके साथ ही फर्श पर कोने में चौका डालकर आसन और पूजा की चौकी रखी हुई है। आसन पर मा खड़ी, ताक में रखी हुई 'जोत' जगाने का प्रयास कर रही है।

उम्र कोई चालीस वर्ष, किन्तु परिस्थितियों ने इस उम्र ही में उसे बूढ़ी बना दिया है। पिचके गाल, रूखे बाल, आखें गढों में धँसी, जबड़ों की हड्डियाँ उभरी हुई, शरीर दुर्बल और कमजोर, जैसे हड्डियों के पिंजर को कमीज़ और धोती पहना दी गयी हो।

एक बार दियासलाई जलाती है, पर वह खिड़की की हवा से बुझ

जाती है, फिर जलाती है, फिर बुझ जाती है, फिर तीसरी जलाती है, हवा का झोंका आता है, वह भी बुझ जाती है।]

(बहू को आवाज़ देती है।)

मा : बहू, लाजवती, लाज !

(आँगन से बहू की आवाज़ आती है।)

बहू : आयी।

[प्रवेश करती है। हाथों में आटा लगा है, बाल खुले हैं, शरीर पर एक मैली सी धोती और ब्लाउज़ और कलाइयों में शीशे की चूड़ियाँ हैं।]

मा देखो बहू, यह खिड़की बन्द कर दो, और आंगन से कुछ फूल ले आओ।

[बहू खिड़की बन्द करके चली जाती है। मा फिर दियासलाई जलाकर जोत जगाती है, फिर नत-मस्तक होकर प्रार्थना करती है।]

: हे मा, हे शक्ति, तुम्हारी जोत मेरे घर में सदैव जलती रहे, इस घर के अँधेरे को दूर करती रहे, बहू को सुमति दे.. .....

[बहू फूल ले कर प्रवेश करती है और चुपचाप आसन के पास रखी हुई चौकी पर रख कर चली जाती है।]

: (पूर्ववत् प्रार्थना करती हुई) चेतन को सुमति दे... ....

[बाहर से चेतन और आनन्द के बातें करने की आवाज़ सुनायी देती है।]

चेतन : मैं शर्त बदता हूँ यदि कैट (Cat)* न हो।

आनन्द : कार (Car)† होगा, देख लेना।

*कैट = बिल्ली † कार = मोटर

[मा जोत के आगे फिर एक वार झुककर आसन पर बैठ जाती है और पूजा करने लगती है । बाहर दोनों बराबर बहस कर रहे हैं ।]

चेतन : मैं कहता हूँ कैट ही होगा, मैं शर्त लगाता हूँ ।

आनन्द : (हठ के स्वर में) कार है ।

चेतन : तो लगाओ शर्त ।

आनन्द : शर्त ! कितने की ?

चेतन : पाँच, पाँच की ?

आनन्द : (हँसकर) शर्त तो जुआरी लगाते हैं, और फिर यदि यहाँ जेब में पाँच रुपए हों तो और छः दल ही न भेज दें ...

चेतन . (वेज़ारी से) हुँ !

आनन्द : और फिर यह तो मात्र कामन-सेंस, महज आम समझ की बात है। कार की पों-पों से प्रायः पड़ोसी तग आ जाते हैं और उनमें लड़ाई हो जाती है ।

[पूजा मे विघ्न पड जाने से मा के तेवर चढ़ जाते हैं और माला वह जल्दी-जल्दी फेरने लगती है ।]

चेतन : और जो बिल्लियाँ रात को लड़ें... ।

आनन्द : अरे कार की पों पों से विल्ली की म्याऊॅ-म्याऊॅ का क्या मुका-बला ? कार की पों-पों कान के पास हो, तो कुम्भकरण भी वर्षों की नींद से जागकर उठ खड़ा हो और विल्ली की म्याऊॅ-म्याऊॅ . ... (ठहाका मारता है) सोचो यदि दिन-भर दफ्तर में बैठे-बैठे सिर खपाने के बाद थका-हारा तुम्हारा मस्तिष्क स्वप्न-संसार के मजे ले रहा हो और ऐन उस वक्त तुम्हारे पडोसी की कार अपने भद्दे और

भोंडे स्वर में पों-पों कर उठे तो तुम उस नामाकूल पड़ोसी का सिर न फोड़ने को तैयार हो जाओगे।

[कुछ क्षण मौन जिसमें मा की गुनगुनाहट तनिक ऊँची और माला फेरने की गति तीव्र हो जाती है। दोनों आँगन के दरवाजे से प्रवेश करते हैं और मा को देखकर ठिठकते हैं, फिर चेतन आगे बढ़ता है। हाथ में अँग्रेजी का समाचार-पत्र है।]

चेतन : मा!

(मा और भी जल्दी-जल्दी माला फेरती है।)

चेतन : मा!

[मा नहीं बोलती, भृकुटी चढ़ा उसकी ओर तीव्र-दृष्टि से देख कर पूर्ववत् जल्दी-जल्दी गुनगुनाये जाती है और माला फेरे जाती है]

चेतन : देखो मा, मुझे एक बात बता दो, फिर चाहे सारी उम्र बैठी पूजा करना।

[पास पड़े हुए लोटे से चरणामृत लेकर, माला को गोद में रख कर मा चेतन की ओर देखती है।]

मा : कहो!

चेतन : साधारणतया बिल्लियों के कारण पड़ोसियों में झगड़ा होता है अथवा मोटर के कारण।

मा : चेतन!

[आग ऐसी दृष्टि से उसकी ओर देखती है और फिर काली माता के सामने सिर झुका कर माला फेरने लगती है।]

चेतन : देखो मा, मैं तुम्हें पाठ न करने दूँगा, मुझे इस पहेली का हल भेजना है और आज अन्तिम तिथि है।

मा : (माला रख कर) आग लगे तुम्हारी इन मुई पहेलियों को, तुम मुझे शान्ति से पाठ भी न करने दोगे, क्या बड़ा काम है तुम्हें! (मुँह बनाकर) पहेली भेजना है। घर की गरीबी की तुम्हें परवा नहीं, धर्म-कर्म का तुम्हें ध्यान नहीं। बस इन्हीं निगोडी पहेलियों के पीछे अपना और दूसरों का समय गवाया करो।

चेतन : (दार्शनिक भाव से) बिना समय गँवाये कभी किसी ने कुछ पाया है?

मा : (चिढ़ कर) तो इतना समय तुमने गँवाया, एक वर्ष तो मुझे भी देखते हो गया, कानी कौडी तो तुमने पायी नहीं। बहू सूने हाथों फिर रही है, जहाँ पहले सोने के गोखरू थे, अब वहाँ निगोडी शीशे की चूडियाँ हैं। पहनने को कपड़ा उसके पास नहीं। खैर, गहनों कपड़ों की बात जाने दो, पर पेट तो खाने को माँगेगा, तुम्हें उसका भी कुछ ध्यान नहीं। इस एक वर्ष में कितना समय और फिर कितना रुपया तुमने गँवाया? बताओ क्या दिया अब तक तुम्हारी इन पहेलियों ने? मैं तो अभी शक्ति माता से प्रार्थना कर रही थी कि तुम्हें सुमति दे, बहू को सुमति दे, जो तुम्हें सब कुछ उठा कर दे देती है।

चेतन : (लज्जित हुए बिना) अपने पास से कुछ गँवाये बिना किसी को ससार में कुछ नहीं मिलता। बिना यत्न किये कोई कुछ नहीं पाता, प्रत्येक वस्तु के लिए कुछ न कुछ त्याग करना पड़ता है, कुछ न कुछ गम खाना पड़ता है। दुर्भाग्य से मुझे इस समय रुपया और वक्त दोनों का त्याग करना पड़ रहा है, परन्तु एक बार पहला इनाम आ जाय तो उम्र-भर के कष्ट मिट जायँगे। तेईस हजार का इनाम है,

तेईस हज़ार का !

मां : यह बिना जान खपाये, बैठे-बिठाये धन-दौलत पाने की इच्छा ही तो सब खराबियों की जड़ है। अपने पड़ोसी ही को देख लो, सारी उम्र वह सट्टा लगाता रहा, अन्त में मकान भी गिरवी रख दिया, पर एक पैसा भी उसे न आया और जब मरा तो कफन के लिए मुहल्लेवालों ने चन्दा इकट्ठा किया।

चेतन : यह सट्टा नहीं।

मां : तुम्हारे पिता ही ने क्या पाया ? उम्र-भर वे लाटरियों के मुँह अपने गाढ़े पसीने की कमाई गँवाया किये, लाखों के स्वप्न देखा किये, पर कभी उनका स्वप्न पूरा न हुआ और घर की यह दशा हो गयी।

चेतन : (खीज कर) मैं बीस बार कह चुका हूँ कि यह लाटरी नहीं।

मां : (उपदेश के स्वर में) बेटा, लाटरी क्या, सट्टा क्या, यह क्या, सब जुआ है, और जुए में कौन जीता है और जो जीता है, वही तो हारा है। अन्त कभी किसी का अच्छा न हुआ। इस तरह पाया हुआ कभी किसी के पास न रहा।

चेतन : (सुनी अनसुनी करके) यह न जुआ है, न सट्टा है, न लाटरी, यह तो महज कॉमन-सेंस की, आम समझ की बात है और इसीलिए इस पहेली का नाम कॉमन-सेंस-क्रास-वर्ड-पज़ल आम समझ की व्यत्यस्त-रेखा शब्द पहेली रखा गया है ..

मां : (चिढ़कर) और यह जो तुम कहते हो कि लाखों आदमी यह पहेली हल करते हैं, उनके पास आम समझ नहीं क्या ? क्या वे सब मूर्ख हैं। दिमाग के नाम पर उनके भुस भरा हुआ है ? और किस तरह तुम्हारे उस उजड्ड, गँवार, दसवीं पास इन्स्पेक्टर को दस हजार का इनाम आ गया और तुम बी० ए० पास करके भी अभी तक टापते फिर रहे हो। क्या उसका दिमाग, उसकी आम समझ

तुम से अच्छी है ? फिर यह जुआ नहीं तो क्या है ?

चेतन : (निरुत्तर होकर क्रोध से) तुम्हें कुछ मालूम तो है नहीं, इनसे... इनसे......

आनन्द : (आगे बढ़कर) बुद्धि तीक्ष्ण होती है।

मा : (माला फेरते हुए उठकर) जानती हूँ इस एक वर्ष तुम दोनों की बुद्धि कितनी तीक्ष्ण हुई है। यदि पागल नहीं हो गये तो और एक साल तक हो जाओगे। (चेतन से) तुम स्वयं तो पाठ-पूजा छोड़ बैठे हो, मुझे भी दो घड़ी ईश्वर का नाम न लेने दोगे।

(तेज़ी से उसके पास से होती हुई आंगन को चली जाती है।)

चेतन : (खोखला ठहाका मारता है।) पाठ-पूजा, पाठ-पूजा ..हुँ! सब ढकोसले हैं। मैंने जितना समय पाठ-पूजा करने में लगाया, यदि उतना पहेली हल करने में लगाता तो पहला इनाम मार चुका होता और विलायत की सैर अलग कर ली होती।

आनन्द : भाग्य में होता तब न!

चेतन : अरे भाग्य कैसा ? वह तेईस हजार रुपया, मुफ्त इंग्लिस्तान की सैर और सम्राट जार्ज के राज्याभिषेक पर दो टिकटों का इनाम मेरे हाथ आते-आते रह गया। सब हल मैंने ठीक सोचा था, भरने बैठा तो दो इन्टरलॉकर* (Inter locker) गलत कर बैठा, उस समय भगवान के ध्यान में मग्न था, ख्याल था, इतनी पाठ-पूजा, नेम-धरम† करता हूँ, भगवान क्या मेरी नहीं सुनेंगे। पूरा विश्वास था यह इनाम मुझे ही मिलेगा। उसी में पाँच गलतियाँ निकलीं (चबा-चबाकर) पूजा-पाठ! हुँ! मैंने उसी दिन सब बन्द कर दिया। अब अधिक परिश्रम से, निष्ठा से, पूर्ण रूप से सोच-विचार कर, पहेली का हल भेजता हूँ। यही जो पिछला भेजा है, खूब सोच-समझ

*परस्पर-संलग्न शब्द। †नेम-धरम = नियम-धर्म का अपभ्रंश।

कर भेजा है, और फिर इन्टरलॉकर सारे परम्यूट (Permute)[1] कर दिये हैं, देख लेना इस बार प्रथम-पुरस्कार न आया, तो गलतियाँ दो-एक ही होंगी।

आनन्द : अरे सदैव ऐसा ही होता है, जब-जब तुमने कहा—कि एक या दो गलतियाँ होंगी तब-तब पाच-पाच, छः-छः आयीं और याद है, जब एक बार तुमने कहा था अबके पहला इनाम बस मे मार ही लूँगा, तभी गलतियाँ दस आयी थीं।

चेतन : नहीं, इस बार देख लेना, अव्वल तो पहला इनाम लिया, नहीं तो एक-दो गलतियों का तो कहीं गया ही नहीं।

आनन्द : आ गया तुम्हें इनाम !

चेतन : १८ हल भेजे हैं।

आनन्द : यहाँ ३६-३६ भेजने वालों को कौडी तक न मिली।

चेतन : (आनन्द के कन्धे पर थपकी देकर) कहो यार, यदि यह इनाम तुम्हें आ जाये तो।

आनन्द : यहाँ ऐसे भाग्य के धनी नहीं, जब से पहेली का हल भेजना आरम्भ किया है, पाँच ही गलतियाँ आती हैं, न चार न छः। तुम्हारी तरह यदि कहीं मै तीन से अधिक हल भेजता तो अब तक कई छोटे-मोटे इनाम मार ले जाता।

चेतन : पर मै पूछता हूँ, यदि यह तुम्हें आ जाये !

आनन्द : मुझे आ चुका, मै तो अब छोड़ दूँगा भाई, आयेगा किसी बुद्धू को, भला बताओ उस नामाकूल इंस्पेक्टर को आ गया। जानते हो उसने क्या किया? रुपया उसने बैंक में जमा करा दिया,

[1] अदल-बदल कर कुल जितने शब्द बनें विभिन्न रूपनों में उतने भर देना।

और अब उसके हल से पहेलियाँ भेज रहा है।

चेतन : अरे वह फिर ले जायगा, कमबख्त, तीस-तीस कूपन भेज देता है।

आनन्द : कमाना पड़े तब न, ब्याज भी तो ४० के लगभग आता होगा। परमात्मा देता भी है तो किन मूर्खों को। एक दिन मैंने पूछा खान, अगर अबके इनाम आजाय तो क्या करो? कहने लगा एक बीवी और ले आऊँ। और वह अपने कथन के सम्बन्ध में गम्भीर था। तुम ही कहो किन गधों को रुपया मिलता है, अरे दस हजार तो दूर रहे, मुझे तो यदि पाँच हजार ही आ जाये तो वह काम कर दिखाऊँ कि......

(बाहर से आनन्द की मा आवाज देती है)

मा : नन्दी! नन्दी!!

आनन्द : लो भाई जाता हूँ, यहाँ देख लेंगी तो खा ही जायेंगी, कहा करती हैं वह तो कमाता है, चाहे गँवाये, तुम किस बाप की कमाई उड़ाते हो, मा की बातें .. हिं हिं, हिं हिं....

[फीकी हँसी हँसता है और आँगन के दरवाजे से भाग जाता है]

(लाजवती प्रवेश करती है।)

लाजवती : मै कहती हूँ आज दफ्तर जाओगे या नहीं, अभी शौचादि से निवृत्त नहीं हुए दातौन नहीं की, नहाये नहीं, क्या इन मुँहजली पहेलियों के पीछे लगे रहते हो।

चेतन : लाज!

लाज० : और मै कहती हूँ, यहाँ आकर क्या शोर मचा दिया, मा पाठ कहाँ करेगी? और पाठ न करेगी, तो खाना न खायेगी, और मै बैठी रहूँगी दो बजे तक।

चेतन : अच्छा शोर मत मचाओ, अभी चला जाऊँगा, सिर्फ एक बात बता दो।

लाज० : कहो !

चेतन : साधारणतया, पड़ोसियों में कौन-सी चीज झगड़े का कारण बनती है, बिल्ली या मोटर ?

लाज० : तुम्हें तो बस सारा दिन यही रहता है, मैं क्या जानूँ !

(जाना चाहती है।)

चेतन : (रास्ता रोकता हुआ) मेरी बात का उत्तर देकर जाओ, आज अन्तिम दिन है हल भेजने का।

लाज० : हटो मुझे जाने दो।

चेतन : पहले बताओ।

लाज० : अच्छा फिर कहो !

चेतन : (हाथ के समाचार-पत्र को देखकर) यह तो अंग्रेजी में है, तुम अभिप्राय समझ लो। लिखा है कि साधारणतया पड़ोसियों में इसकी आवाज झगड़े का कारण बन जाती है। अब बताओ वह चीज बिल्ली है या मोटर ! क्योंकि इन दोनों में से एक ही चीज आ सकती है।

लाज० : बिल्ली !

चेतन : (आँखों में चमक आ जाती है) कैसे ?

लाज० : सब पड़ोसियों के पास तो मोटरें होती नहीं, हो सकता है सारे के सारे मुहल्ले में भी एक मोटर न हो, और बिल्लियाँ तो घर घर...

चेतन . (खुशी से पागल होकर) लाज !

[उसे आलिङ्गन-बद्ध कर लेता है और फिर उसे छोड़ कर जेब से फाऊन्टेन पेन निकाल कर वहीं पत्र पर लिखता है।]

: (ऊँचे स्वर से) सी, ए, टी, कैट, मैंने बैंक* कर दिया (उछल कर) ईस्पात की तरह न टूटने वाला बैंकर !

: (कुछ नरम होकर) लाज, यदि हमें पहला इनाम आ जाये !

(लाजवती की आंखें खुली रह जाती हैं ।)

: सच कहता हूँ तुम्हें गहनों-कपड़ों से लाद दूँ । (दीर्घ निश्वास छोड़ता है) मैंने तुम्हें कितना कष्ट दिया है लाज ! तुम्हारा कोई शौक तो मैं क्या पूरा करता, उल्टा तुम्हारी बनी हुई चीजें भी ले जाता रहा। (सहसा जोश से) पर मैं इन सब की कसर निकाल दूँगा लाज, एक बार—केवल एक बार इनाम आ जाये । गहनों के ढेर लगा दूँगा, कपड़ों के अम्बार लगा दूँगा, पच्चीस हजार का इनाम है । इस बार—पच्चीस हजार का एक कार और दो आदमियों के लिए मुफ्त इंग्लिस्तान की सैर । लाज, मैं तुम्हें अपने साथ इंग्लिस्तान ले जाऊंगा इंग्लिस्तान स्वतन्त्रता, सम्पन्नता, धन, वैभव के उस देश में........

[लाजवती के अनिमेष खुले दृगों में चमक आ जाती है, फिर उदासी छा जाती है ।]

लाज० : (एक लम्बी साँस खींचकर) अच्छा जाओ । आ गया पच्चीस हजार ! अब चल कर नहाओ, खाओ, दफ्तर की तैयारी करो और मा को इधर पाठ करने दो ।

(जल्दी-जल्दी चली जाती है ।)

[दीर्घ निश्वास छोड़ कर समाचार पत्र पढ़ता-पढ़ता चेतन पीछे-पीछे जाता है ।]

पर्दा

ह्यस १६३६

* जो शब्द सब कूपनों में वैसा का वैसा रहने दिया जाय ।

आपस का समझौता

प्रहसन

पात्र

डाक्टर वर्मा

डाक्टर कपूर

डाक्टर ब्रजलाल

श्रीमती वर्मा

मिस्टर परतूल चन्द

मुन्नू, बलचरण

पहला दृश्य

स्थान

डाक्टर वर्मा की सर्जरी।

समय

सुबह आठ बजे।

[एक चतुर्भुजाकार कमरा है जिसमें सामने की दीवार में दायीं ओर एक दरवाजा है, जो सर्जरी को जाता है, उस पर इस समय मूंगी के रंग का गहरा हरा पर्दा लगा है।

उसी दरवाजे के साथ बायीं ओर को हटकर दीवार के साथ एक कुर्सी लगी है जिसके सामने बड़ी मेज पड़ी है। मेज पर दायीं ओर एक रैक में कुछ पुस्तकें चुनी रखी हैं, उसके साथ ही किनारे पर दन्त-चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाली कुछ पत्रिकाएँ एक दूसरी के ऊपर क़रीने से चुनी हुई हैं। मेज़ के बायें किनारे पर दीवार के साथ एक 'स्टेशनरी कैबिनेट' है, जिसमें काग़ज-पत्र आदि रखे हुए हैं।

बायीं दीवार में एक दरवाजा है जो बाहर बाज़ार की ओर बरामदे में खुलता है, इस पर भी वैसा ही पर्दा पड़ा हुआ है।

दीवारों पर दाँतों से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न प्रकार के चित्र और मॉटो टँगे हैं। सामने की दीवार पर तीन मॉटो साफ़ दिखायी देते हैं।

"मुँह शरीर का दरवाज़ा है उसकी रक्षा करो।"

"रोगी दाँत कब्र खोदने वाले फावड़े हैं।"

"७५ प्रतिशत बीमारियाँ रोगी दाँतों से फैलती हैं।"

डॉक्टर वर्मा चुपचाप कुर्सी पर बैठे हैं। मेज पर कुहनियाँ टेक कर और हथेली पर ठोडी रखे सोच रहे हैं। आयु कोई बत्तीस वर्ष, किन्तु बालों में अभी से सफेदी आ गयी है। एक पुराना सूट सफाई और सावधानी के साथ पहने हुए हैं।

बाहर घंटी बजती है।

डॉक्टर वर्मा रैक में से जल्दी से एक मोटी सी पुस्तक सामने रखकर उसे योंही मध्य से खोल लेते हैं और मेज पर कुहनी टेक कर बड़ी तन्मयता से उसके अध्ययन में निमग्न हो जाते हैं।]

(घंटी फिर बजती है।)

डा० वर्मा : (दृष्टि पूर्ववत पुस्तकों पर जमाये हुए) आ जाइए।

[बायीं ओर दरवाजे का पर्दा उठाकर डा० कपूर प्रवेश करते हैं।]

डा० कपूर : हलो वर्मा !

(डा० वर्मा चौंक कर पुस्तक से नज़र उठाते हैं।)

डा० वर्मा : ओ.... (खड़े होकर हाथ बढ़ाते हैं।).. अरे तुम हो कपूर ! मैंने समझा कोई पेशेन्ट* *Patient* है।

(दोनों हाथ मिलाते हैं।)

*पेशेन्ट = रोगी

डा० कपूर . मोटा पेशेन्ट, एँ !

(हाथ हिलाते हुए ठहाका मारते हैं ।)

डा० वर्मा : साधारण रोगियों को बटी बजाने की तमीज कहाँ ? वे तो धंसाधस अन्दर चले आते हैं। वेटिङ्ग रूम में न होऊँ तो अन्दर सर्जरी तक बढ आते हैं। मैंने समझा था कि कोई मोटा और सभ्य पेशेन्ट है।

डा० कपूर : मोटा और सभ्य !.....

(हँसते हैं।)

डा० वर्मा (कुर्सी की ओर संकेत करके) बैठो, क्या हालचाल हैं आजकल ?

स्वयं भी अपनी जगह पर बैठ जाते हैं और पुस्तक को परे सरका देते हैं।]

डा० कपूर : (मेज़ से कुंजियों का गुच्छा उठाकर अंगुली में घुमाते हुए) किसी तरह बीत रही है।

डा० वर्मा : यहाँ तो भाई यदि यही हाल रहा तो ... मैं सोच रहा हूँ कि इस सब साज-समान को उठाने के लिए भी दो सौ रुपये दरकार हैं।.... और फिर दो महीने का किराया। मालिक-मकान का सिर पर हो चुका है।

डा० कपूर : दो महीने का ?

(कुंजियों के गुच्छे को मेज पर रख कर टाँगें हिलाते है।)

डा० वर्मा . हाँ-हाँ, दो महीने का पूरे एक सौ बीस रुपये। मैं कहता हूँ, यार तुम बड़े अच्छे रहे। अभी दो वर्ष तुम्हें प्रेक्टिस आरम्भ किए नहीं हुए कि चल निकले हो और फिर कालेज के बाद दो चार वर्ष घूम फिर कर जो आनन्द लिये वे घाते में। यहाँ तो जब से डिग्री ली

है, पड़े उसकी जान को रो रहे हैं।

(उठकर कमरे में घूमते हैं।)

डा० कपूर . तो स्थान क्यों नहीं बदल लेते ?

डा० वर्मा : (रुककर) पहले इस ख्याल में रहे कि शुरू-शुरू में तो समस्त लाहौर के रोगी इधर फट पड़ने से रहे, फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि बस अब चल ही निकलेंगे, पर इधर जब से गर्मियाँ शुरू हुई हैं......

डा० कपूर : किन्तु उधर तो गर्मियों में सब वैसे ही चलता है।

डा० वर्मा : सरक्यूलर रोड की बात करते हो। भाई भाग्य के बली हो कि पहले ही अच्छी जगह डेरा जम गया। नित्य नया मरीज़ पड़ता है। स्टेशन से सीधा रास्ता; बाहर से जो लोग लाहौर के निपुण डाक्टरों से चिकित्सा कराने आते हैं, वे तुम्हारे यहाँ ही तो फँसते हैं। उधर की क्या बात है ? काम खराब हो जाय तो चिन्ता नहीं, बिगड़ जाय तो चिन्ता नहीं, जब रोगी को पता चलता है तो वह लाहौर से बीसों मील दूर होता है। यहाँ तो ऐसी मनहूस जगह से पाला पड़ा है कि जरा भी काम ख़राब हो जाय तो दस-दस दिन तक रोगी जान खा जाता है। मानों फीस देकर उसने सदा के लिए हमें ख़रीद लिया हो।

(बेज़ारी से सिर हिला कर फिर घूमते हैं।)

डा० कपूर : (जैसे विनम्र-गर्व के साथ) भाई दूर के ही ढोल सुहावने प्रतीत होते हैं। रोगी तो वहाँ काफी आते हैं, इसमें संदेह नहीं, पर अधिकांश ऐसे, जिन्हें तुम अपने वेटिंग-रूम में भी पग न धरने दो। तुम्हारे इधर तो मोटी आसामियाँ फँसती हैं।

डा० वर्मा : (रुककर) मोटी (विषाद से मुस्कराते हैं।) उनके लिए क्या माल * उठ गयी है।

डा० कपूर : पर सेक्रेटेरियट † तो है।

डा० वर्मा : उनमें जो किसी योग्य हैं, वे शिमले चले जाते हैं।

डा० कपूर : और कालेज !

डा० वर्मा : (जैसे निराशा की सीमा को पहुँच कर) उनमें छुट्टियाँ हो जाती हैं।

[जाकर अपने स्थान पर बैठ जाते हैं। कुछ क्षण के लिए मौन, जिसमें डा० वर्मा हथेली पर मस्तक रख कर सोचते हैं और डा० कपूर बेख़बरी में टांगे हिलाते हैं और मेज़ से कुँजियों का गुच्छा उठाकर उंगली में घुमाते है।]

डा० कपूर : (जैसे सहसा कोई बात सूझ गई हो) मेरा ख्याल है आजकल तो कालेज खुल चुके हैं।

डा० वर्मा : हाँ खुल चुके हैं, पर बात वास्तव मे यह है कि कालेजों में प्रतिवर्ष नये छात्र आते हैं, चाहिए तो यह कि हर साल दाखिले के आरम्भ ही में खूब प्रोपेगंडा ❀ किया जाय ताकि नये छात्र भी नाम से परिचित हो जायँ, पर प्रचार के लिए चाहिए रुपया और रुपया (जेबों से खाली हाथ निकालते हैं और हँसते है।) यहाँ नदारद है।

[हाकर बाहर बारामदे में से ही पर्दा उठाकर समाचार-पत्र फेंक जाता है। कौच पर बैठे-बैठे ही डा० कपूर उसे उठा लेते है।]

* मालरोड। † सरकारी दफ्तर।
❀ प्रोपेगंडा = प्रचार।

डा० वर्मा . वैसे दुकान मेरी ढब पर है। सच पूछो तो छः कालेज इसके समीप हैं। यदि कहीं ठीक ढग से इन मे प्रचार हो जाय, तो वारे न्यारे हो जायँ। पर होता यह है कि जब तक कोई लडका बार-बार इधर से गुजरने पर मेरे नाम से परिचित होता है कि उसकी शिक्षा समाप्त हो जाती है और वह फर्स्ट इयर के फूल* इन्ह तो इतनी भी समझ नहीं कि निस्बत रोड और अनारकली में क्या अन्तर है। बस जिन लोगों के नाम प्रान्त में प्रसिद्ध हैं उनके ही यहाँ वे जाते हैं फिर चाहे वे उल्टे उस्तरे से ही उन्हें मूड-डालें। यहाँ तो भाई चाहिए प्रॉपेगंडा निरन्तर प्रॉपेगंडा।

[डा० कपूर समाचार-पत्र पढ़ने लगते हैं, पर अन्तिम शब्द सुनकर उसे परे कर देते हैं।]

डा० कपूर : ये सब तो भाई दिल को समझाने की बातें हैं, नहीं हम कौन-सा प्रोपेगंडा करते हैं। तुम तो फिर भी दाँतों के सर्वश्रेष्ठ डाक्टर होने का, अमेरिकन रीति से दाँत लगाने का, दाँतों की चिकित्सा में निपुणता रखने का विज्ञापन दे सकते हो, पर हमें तो सिरे से विज्ञापन देने की आज्ञा ही नहीं और फिर ले-दे कर चार ही तो दाँतों की बीमारियाँ हैं, यहाँ इतनी, कि गिनती ही नहीं करना चाहें तो किस-किस का प्रचार करें।

(पत्र पर दृष्टि जमा देते है।)

डा० वर्मा : क्यों तुम अपने आई-स्पेशेलिस्ट[1] होने का प्रचार नहीं करते ? मैंने स्वयं तुम्हारे नौकर को विज्ञापन बाँटते देखा है।

डा० कपूर : (समाचार पत्र परे हटाकर) वह (जरा हँसता है) यह तो मैंने अभी ऐनकों का काम आरम्भ किया है न, इसीलिए उसकी कुछ

* कालेज के पहले वर्ष में जो छात्र जाते हैं उन्हें ऊँची श्रेणियों के छात्र व्यंग्य से Fool अर्थात् मूर्ख कहते हैं।

[1] आई-स्पेशेलिस्ट आँखों के विशेषज्ञ-चिकित्सक।

आवश्यकता हुई है, तुम तो जानते हो हम डाक्टरों को प्रचार करने की सर्वथा मनाही है।

डा० वर्मा पत्र के दो पृष्ठ इधर दो।

[कपूर समाचार-पत्र के बीच के दो पृष्ठ निकाल कर देते हैं और डा० वर्मा बड़ी तन्मयता से उनके अध्ययन में विलीन हो जाते हैं।]

डा० कपूर · (पत्र पढ़ना छोड़कर) कहता हूँ, दस वर्ष तक जो ऐश किये, वे मृत्यु-पर्यन्त स्मरण रहेंगे। कालेज के बाद भी कुछ ऐसा बुरा नहीं रहा, पर अब तो जब से यह प्रैक्टिस का बन्धन पड़ा है, जीवन ही दूभर हो गया है।

डा० वर्मा . (समाचार-पत्र से दृष्टि उठाकर) मै तो अब भी कालेज का समाँ बाँध दूँ, पैसा चाहिए।

(दोनों फिर तन्मय होकर समाचार-पत्र पढ़ते हैं।)

डा० वर्मा · (पत्र पढ़ना छोड़कर) बात यह है कि तुम्हारे यहाँ नित्य-नये रोगी आते हैं और फिर आँख, नाक, कान, मन्दाग्नि, अतिसार, कुष्ठ, ज्वर, यक्ष्मा और न-जाने किस-किस रोग की चिकित्सा करने वाली एक ही एम० बी० बी० एस० की डिग्री तुम्हारे पास है, यहाँ तो बस कोरे डेंटिस्ट* हैं और डेंटिस्ट, तुम जानो किसी को पेट-दर्द की भी दवाई नहीं दे सकता।

(फिर समाचार-पत्र पर दृष्टि जमा देते हैं।)

डा० कपूर कम्बख्त कोई ऐसी औषधि भी नहीं कि एक दाँत उखाड़ते समय दूसरे पर लगा दी जाय, तो उसे भी उखाड़ने की नौबत आ जाय।

*डेंटिस्ट = दाँतों के डाक्टर।

[ठहाका मारते हैं और फिर उठकर नपे-तुले पाँवों से कमरे में घूमते हुए समाचार-पत्र पढ़ते हैं। डाक्टर वर्मा जैसे एक-एक खबर को कण्ठस्थ कर रहे हैं।]

डा० कपूर : (समाचार-पत्र बन्द करके और मेज के पास आकर) मैं कहता हूँ वर्मा, यदि ऐसी दवाई तुम्हारे पास होती, तो तुम्हारे सारे रोगी अपने सब दाँत उखड़वाये बिना, तुमसे छुटकारा न पा सकते।

[फिर हँसते हैं, डाक्टर वर्मा इस हँसी में योग नहीं देते, उनकी दृष्टि जैसे पत्र के पृष्ठों को छेद कर मेज़ को छेदने का प्रयास कर रही है।]

डा० कपूर : (फिर रुक कर) अच्छा यह चैम्बरलेन साहब फिर रोम जा रहे हैं, अब किस चैकोस्लोवाकिया की बारी है ?

[डा० वर्मा कोई उत्तर नहीं देते, डा० कपूर वहीं खड़े-खड़े समाचार-पत्र में तन्मय हो जाते हैं।]

डा० वर्मा : (अचानक उठ कर और कपूर के पास जाकर, उनके कंधे पर हाथ रखते हुए) देखो कपूर, तुम मेरे मित्र हो।

(डा० कपूर समाचार-पत्र बन्द कर देते हैं।)

—हम दोनों बचपन में इकट्ठे खेले, कूदे और पढ़े हैं और तुमसे मेरा कुछ पर्दा भी नहीं।

(डा० कपूर उत्सुक-दृष्टि से वर्मा की ओर देखते हैं।)

. . इसीलिए मैं यह बात तुमसे कहने का साहस कर रहा हूँ। देखो यदि अच्छी न लगे तो कुछ ख्याल न करना।

डा० कपूर कहो कहो !

डा० वर्मा : बात यह है कि आय का जो हाल है, उसका पता तुम्हें लग ही चुका है। अब छः वर्ष इसी जगह बीत गये हैं। कुछ लोग मुझे

जान भी गये हैं। ये दो-चार गर्मियों के महीने ठीक नहीं बीतते, सो इनके डर से मैं अब यह दुकान छोड़ना नहीं चाहता। इस सम्बन्ध में मैं तुम से कुछ सहायता की आशा रखता हूँ।

डा० कपूर : मैं प्रस्तुत हूँ। कहो मैं क्या कर सकता हूँ।

डा० वर्मा : देखो, तुम्हारे पास विभिन्न-व्याधियों में ग्रसित कई तरह के रोगी आते हैं। यह सर्वथा सम्भव है कि उनमें से कुछ को दाँतों का भी कष्ट हो। तुम उनसे मेरे नाम की सिफारिश कर सकते हो।

डा० कपूर : मैं अवश्य ऐसा करूँगा।

डा० वर्मा : ठहरो। (बढ़ कर मेज के दराज़ से कार्ड निकाल कर डा० कपूर की ओर बढ़ाते हुए) बात यह है कि यह कार्ड तुम रक्खो, जिस किसी से मेरे नाम की सिफारिश करो उसे, अपना हस्ताक्षर करके, एक कार्ड दे दो। मैं उससे जो फीस लूँगा, उसमें से .. देखो कारोबार आखिर कारोबार है . . २५ प्रतिशत कमीशन तुम्हें दे दूँगा।

डा० कपूर : यह सब व्यर्थ है। कमीशन-ईशन तुम रहने दो। यों मैं भरसक तुम्हारे लिए प्रयत्न करूँगा, यदि किसी को आवश्यकता न भी हो तो भी उसे .. कम-से-कम दाँत साफ करवाने की जरूरत निश्चय ही महसूस करवा दूँगा . . . तुमसे यह तो सीख ही लिया है कि ७५ प्रतिशत रोग खराब दाँतों से फैलते हैं।

[दायीं ओर के एक माटो की ओर संकेत करते हैं और हँसते हैं।]

डा० वर्मा : (उदास होकर) तो तुम भेज चुके।

डा० कपूर : नहीं, मैं जरूर भेजूँगा, पर यह कमीशन का झगड़ा रहने दो।

डा० वर्मा : (जैसे समझाते हुए) देखो भाई, यह तो कारोबार है। माना तुम इन छोटी-छोटी बातों की परवाह नहीं करते, घर से ध-

पीते सम्पन्न आदमी हो, रोगी भी तुम्हारे यहाँ खूब आते हैं और यह साधारण सी रकम तुम्हारे लिए कोई महत्व नहीं रखती, पर तुम्हारे मित्र के लिए तो रख सकती है, तुम्हें रुपये की इतनी आवश्यकता न सही, पर .....

डा० कपूर . तुमसे किस कम्बख्त ने कहा है कि मुझे रुपये की आवश्यकता नहीं। घर से खाता-पीता हूँ तो क्या? माता-पिता ने शिक्षा दिला दी, डाक्टर बना दिया, अब कमाओ और खाओ। रोगी अवश्य आते हैं, पर यहाँ सदैव दीवाला पिटा रहता है। आय दो है, तो खर्च चार.... .पर अब इतना भी क्या गया-गुजरा हूँ कि तुम से कमीशन लूँगा।

डा० वर्मा : भाई इसमें भावुकता की क्या बात है? यह तो कारोबार है! (तनिक धीमे स्वर में) और फिर कोई कमीशन के लिए थोड़े ही मेरे नाम की सिफारिश करोगे, वह तो तुम मित्र के नाते...

डा० कपूर · नहीं, नहीं, देखो मैं एक तरह से कमीशन ले सकता हूँ।

[डा० वर्मा उत्सुक नजरों से डा० कपूर की ओर देखते हैं।]

डा० कपूर : और वह यह कि तुम मेरे नाम की सिफारिश करो, अब इसमें भावुकता के लिए कोई स्थान ही नहीं!

डा० वर्मा · तुम्हारे नाम की?

डा० कपूर : हाँ, हाँ। तुम्हारे यहाँ जो रोगी ऐनक लगवाना चाहे अथवा जिनकी नजर कुछ कमजोर हो उनसे तुम मेरा नाम ले सकते हो।

(जेब मे कार्ड निकालते हैं।)

▲ : और यह लो कार्ड, इस पर केवल रायल आपटीशियन्ज (*Royal opticians*) ही लिखा है। मैं अपने नाम को इस नाम के साथ नहीं लगाना चाहता। बस तुम इस कार्ड के पीछे हस्ताक्षर करके

इस व्यक्ति को दे देना। मैं तुम्हें २५ के बदले ३० प्रतिशत कमीशन दूँगा।

डा० वर्मा : तुम तो उपहास करते हो।

डा० कपूर : नहीं उपहास कैसा, मैं सच कहता हूँ। अरे इसमें लगता ही क्या है, लाभ ही लाभ है, तुम्हें तो फिर भी कुछ परिश्रम करना पड़ता है, यहाँ तो जापान सलामत रहे ..

(ज़ोर का ठहाका मारते हैं।)

डा० वर्मा : अच्छा, अच्छा पर कमीशन २५ ही रहने दो।

डा० कपूर : ठीक !

(समाचार-पत्र मेज़ पर फेंक कर हाथ मिलाते हैं।)

: तो मुझे अब चलना चाहिए, रोगियों के आने का समय हो गया होगा।

डा० वर्मा : तो यह आपस का समझौता हम में हो गया।

डा० कपूर : (चलते हुए) हाँ, हाँ !

[डा० वर्मा उनके साथ-साथ दरवाज़े की ओर चले जाते हैं। दरवाज़े पर पहुँच कर डा० कपूर हाथ मिलाकर चले जाते हैं।]

डा० वर्मा : (दरवाज़े में खड़े-खड़े सम्भवतया बाहर जाते हुए डा० कपूर को लक्ष्य करके ज़रा ऊँचा स्वर में) तो ख्याल रखना।

डा० कपूर : (बाहर से) तुम भी !

डा० वर्मा : क्यों नहीं, क्यों नहीं ! परमात्मा ने चाहा तो कल ही तुम्हें कुछ-न-कुछ कमीशन मेरे यहाँ भिजवाना पड़ेगा।

डा० कपूर : (बाहर से) शायद तुम्हें मेरे यहाँ भिजवाना पड़े।

(बाहर से ठहाके की आवाज आती है।)

पर्दा

दूसरा दृश्य

स्थान—

डा० वर्मा के घर का कमरा

समय

रात के ६ बजे

[कमरा उसी तरह का है जिस तरह का पहले दृश्य में। (वास्तव में एक कमरे ही से दोनों दृश्यों का काम लिया जा सकता है।) सामने का दरवाजा सीढ़ियों में खुलता है। बाहर की ओर उस दरवाजे के साथ ही दायीं ओर को रसोई-घर है। यदि दरवाज़ा खुला हो तो रसोई-घर से आने वाली रौशनी भी सीढ़ियों में दृष्टिगोचर होती है। बायीं दीवार में स्टेज के किनारे का दरवाज़ा एक दूसरे कमरे को जाता है।

कमरे से एक ही समय में खाने और सोने के कमरे का काम लिया गया है सीढ़ियों को जाने वाले दरवाजे के साथ ही बायीं ओर को सामने एक गोल मेज लगी है, जिसका मेज़पोश मैला हो गया है। इर्द-गिर्द चार-पाँच कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। मेज़ के साथ

'बायीं ओर, सामने की दीवार के कोने में, एक पलंग बिछा है। दूसरा पलंग दायीं ओर दीवार के साथ लगा है।

दायीं और बायीं दीवारों में खूंटियाँ लगी हैं, जिन पर कुछ कपड़े टँगे हुए हैं। छत पर लटकते हुए एक बिजली के हंडे की धीमी रौशनी से कमरा प्रकाशित है।

पर्दा उठते समय कमरा बिलकुल खाली है। सीढ़ियों से डा० वर्मा की आवाज आती है]

डा० वर्मा : शीला, शीला!

श्रीमती वर्मा : (बायीं ओर के कमरे से) आयी!

(सीढ़ियों की ओर से डाक्टर वर्मा प्रवेश करते हैं।)

डा० वर्मा : (कमरे को खाली देख कर) इधर भी नहीं, आखिर किधर हो! (तनिक क्रोध से) शीला, शीला!

श्रीमती वर्मा : (उसी कमरे से) कह तो रही हूँ आयी, आयी!

डा० वर्मा : आयी कहाँ, जाने तुम रहती कहाँ हो? कभी समय पर मैंने तुम्हें यहाँ न पाया। दिन भर का थका-माँदा दुकान से आता हूँ, पर तुम्हारा. . . .

श्रीमती वर्मा : (उसी कमरे से) मैं कहती हूँ आते ही यह शोर क्या मचा दिया? तीन-तीन संदेश तो दिन भर में मैंने भेजे, क्षण भर के लिए आपसे आया न गया, रास्ता देखते देखते आँखें पक गयीं। (स्वेटर बुनती हुई दरवाज़े को पांव से ठेल कर प्रवेश करती है।) आये बड़े समय पर आने वाले!

डा० वर्मा : (कोट उतारते हुए व्यंग्य से) मेरा रास्ता देखते-देखते आँखें पक गयीं! मैं गरीब तो वह क्लर्क भी नहीं, जिसकी पत्नी कम-से-कम वेतन पाने के दिन तो उसकी प्रतीक्षा करती है।

श्रीमती वर्मा : (क्रोध से) तो क्या मैं ..

डा० वर्मा . नहीं-नहीं, आँखें तो तुम्हारी जरूर ही पक गयी होंगी, पर आज यह कृपा क्यों ?

(मुस्कराते हैं ।)

श्रीमती वर्मा . दिन में तीन बार लाला का आदमी चक्कर लगा गया है । मालूम है, आज धमकी दे गया है कि रुपये न मिले तो सौदा देना बन्द कर दूँगा ।

(कोट ले जाकर खूँटी पर टाँगती है ।)

डा० वर्मा (हँस कर) और हमने समझा था कि आज तुमने स्वयं अपने हाथों से कोई स्वादिष्ट चीज़ तैयार की है ।

श्रीमती वर्मा : (वापस आते हुए) और धोबी तीन बार आ चुका है । उसकी भावज लड़ कर भाग गयी है, उसे मनाने के लिए उसे जाना है । वह कहता है, मेरा हिसाब चुकता कर दो ।

[डा० वर्मा केवल सीटी बजाते और वास्केट उतार कर देते हैं ।]

श्रीमती वर्मा : (वास्केट लेते हुए) और मेहतरानी अलग जान खाये जाती है । (जाकर वास्केट खूँटी पर टाँगती है) मैं कहती हूँ कौन से बड़े पैसे हैं उसके, क्या इतने से भी रह गये ? और फिर दूधवाला..

डा० वर्मा · (कानों पर हाथ रखते हुए) बस, बस, कुछ कल के लिए भी उठा रक्खो ।

श्रीमती वर्मा मैं कहती हूँ कि यदि यह मुई दूकान नहीं चलती तो इसे उठा दो, इससे तो भीख माँग लेना अच्छा ।

डा० वर्मा : देखो शीला, अब बस करो। मै आज झगड़ा करने के मूड (*mood*)※ में बिलकुल नहीं, मै आज बहुत प्रसन्न हूँ।

श्रीमती वर्मा (पास आकर कुछ नरमी से) कहिए कोई सेट † मिला ?

डा० वर्मा · (कुर्सी पर बैठ कर बूट उतारते हुए) सेट ! तौबा करो, एक-एक्सट्रेक्शन × (*extraction*) तक भी नहीं, पर स्कीम मैंने वह सोची है कि ऐक्सट्रेक्शनों और सेटों की भरमार हो जाय।

श्रीमती वर्मा : (मुह लटक जाता है।) बस, बस रहने दो अपनी स्कीमें, सुन-सुन कर कान पक गये। पैसा तो कभी आता नहीं, उल्टा पास से ही कुछ चला जाता है।

डा० वर्मा . मैं कहता हूँ ....

श्रीमती वर्मा : अब रहने भी दीजिए अपनी स्कीमें अपने पास ! (नौकर को आवाज देती है।) वे मुंडू, ला हाथ धुला इनके (डा० वर्मा से) अब आराम से बैठ कर खाना खाइए। और भी किसी को पेट की आग बुझानी है और फिर इतना काम सिर पर है।

डा० वर्मा : मै कहता हूँ वह स्कीम ही ऐसी है कि हींग लगे न फिटकरी रंग चोखा आये।

(मुँडू दरवाज़े से झाँकता है।)

मुंडू क्या कहा बीवी जी।

श्रीमती वर्मा : ऐ मुए सुना नहीं . . मैं तो हार गई इन नौकरों के मारे . कानों में जाने रुई डाल रखते हैं अब मुटर-मुटर क्या तक रहा है, जा पानी ला, इनके हाथ धुला।

डा० वर्मा · (पाँवों से बूट निकाल कर मेज़ के नीचे करके जूता पहनते हुए)·

※ मूड = चित्त की अवस्था। †सेट = दाँतों का पूरा जबड़ा जो डेन्टिस्ट बनाता है। × ऐक्सट्रेक्शन = दाँत उखाड़ना।

हाँ जल्दी ला पानी, चल ! (पत्नी से) देखो वह स्कीम यह ....

श्रीमती वर्मा . पर मै एक कौडी भी न दूँगी, कानी कौडी भी नहीं ! मेरे पास अब कुछ नहीं रहा, -स......

डा० वर्मा : (जैसे थक कर) ओ हो !.. मैं कहता हूँ एक पैसा भी तुम्हें देना न पडेगा (सहसा गम्भीर होकर और स्वर को कुछ करुण बना कर) वास्तव में शीला, मैंने तुम्हें वडा कष्ट दिया है, वार-वार अपनी व्यर्थ की स्कीमो के लिए तुम्हे परेशान करता रहा हूँ, गहना भी कोई बनवाकर देने के वदले. (उठ कर और पत्नी के कंधे पर हाथ रख कर) किन्तु मै स्वयं लज्जित हूँ शीला, आखिर मैं करूँ क्या ? तुम देखती हो, कभी पान मैं नही चवाता, सिगरेट मै नही पीता और कोई व्यसन मुझे नही और अपव्ययता के नाम (पतलून की ओर सकेत करके) विवाह का ही सूट अब तक पहने चला जाता हूँ।

[नौकर पानी लाता है और डा० वर्मा हाथ धोकर तौलिये से पोंछते हैं।]

श्रीमती वर्मा (नौकर से) जाओ थाली परस लाओ, और देखो चीनी की छोटी प्याली में अदरक का अचार ले आना और एक चौथाई से आधा नीबू भी (डा० वर्मा से) मिरच तो आप खायेंगे नहीं (नौकर से) मिरच. .. मिरच न लाना।

(नौकर चला जाता है।)

डा० वर्मा मै कह रहा था शीला कि मैं क्या करूँ, यह काम ही ऐसा है, दुकान चाहिए, नौकर चाहिए, टीम-टाम चाहिए और फिर थोडी वहुत विज्ञापन-वाजी भी चाहिए, लोग यह देखते हैं कि डेन्टल सर्जन हैं, और इसकी दुकान अनारकली के समीप है और वड़ी शान है। अन्दर से हाल कितना पतला है, यह कोई नहीं जानता।

श्रीमती वर्मा : (संवेदना के स्वर में) मैं तो बीस बार कह चुकी हूँ कि कहीं कोई छोटी सी दुकान.. ..

डा० वर्मा : वह इस नगर में तो सम्भव नहीं, और दूसरी जगह जाकर दुकान जमाने की हिम्मत अब मुझ में नहीं, यहाँ तो लोग फिर भी जान गये हैं, यह जो तीन चार महीने बीते हैं, अवश्य खराब लगते हैं, पर धीरे-धीरे ये भी ठीक हो जायेंगे। बस तुम जरा सहायता...

श्रीमती वर्मा · पैसा मेरे पास.... .

डा० वर्मा : मैं कहता हूँ एक पैसा भी नहीं चाहिए।

[नौकर थाली परोस कर लाता है, श्रीमती वर्मा हाथ के स्वेटर को कुर्सी की पीठ पर रख कर थाली को नौकर से ले, मेज़ पर रख देती है और वर्मा साहब फिर कुर्सी पर बैठ जाते हैं।],

श्रीमती वर्मा · (नौकर से) चल बैठ रसोई-घर में, जरूरत होगी तो तुम्हें बुला लेंगे।

(नौकर चला जाता है।)

(डा० वर्मा से) अब बताइए आप वह अपनी स्कीम।

(मुस्कराती है।)

डा० वर्मा · मैं कहता हूँ तुम हँसती हो, सुनोगी तो दाद दोगी।

श्रीमती वर्मा : अब कहिए भी।

डा० वर्मा : इस तरह खड़े-खड़े क्या कहूँ, इधर कुर्सी पर बैठो, ध्यान से सुनो तो कुछ कहूँ।

श्रीमती वर्मा . (हँसती है) मैं कहती हूँ आप कहिए। मैं ध्यान से सुन रही हूँ। दिन भर बैठी-बैठी थक गयी हूँ।

(डा० वर्मा खाना शुरू कर देते हैं।)

डा० वर्मा : (ग्रास तोड़ते हुए) बात यह है कि आज कपूर आया था।

श्रीमती वर्मा : कौन कपूर ?

डा० वर्मा : डा० कपूर ! वही जो स्कूल में मेरे साथ पढ़ता था। जिसने पाँच के बदले १० वर्ष में एम० बी० बी० एस० की डिग्री ली, जो कभी पढ़ा नहीं, किन्तु फिर भी पास हो गया। कुछ ही महीने हुए उसने सरक्यूलर रोड पर दुकान खोली है। चल भी निकली है। अपना अपना भाग्य है न।

(कुछ क्षण तक चुपचाप खाना खाते हैं)

बात यह है कि उसकी दुकान ठीक मौके पर स्थित है। स्टेशन से सीधा मार्ग होने से बाहर के रोगी तो उसके यहाँ फँसते ही हैं, शहर के रोगी भी वहीं पड़ते हैं।

श्रीमती वर्मा : किन्तु ...

डा० वर्मा : और तुम नहीं जानतीं बाहर के रोगियों से कितना लाभ होता है। काम खराब हो जाय तो डर नहीं, बिगड़ जाय तो डर नहीं और यदि अच्छा हो जाय तो बाहर से और भी रोगी आने लगते हैं। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनसे फीस अधिक ली जा सकती है।

(जल्दी जल्दी खाना खाते हैं।)

श्रीमती वर्मा : मैं पूछती हूँ कि कपूर के यहाँ बाहर से रोगी आते हैं और बीच शहर के रोगी आते हैं, इससे हमें क्या ? बात तो जब है कि .

डा० वर्मा : (खाना खाते खाते हाथ से रोक कर और पानी के घूंट से ग्रास निगल कर) मैं कहता हूँ तुम बात सुनती नहीं कि ले उड़ती हो, स्कीम तो यही सोची कि वे सब रोगी हमारे यहाँ आने लगें।

(मुंह जरा सा दरवाजा खोल कर झाँकता है।)

मुन्नू . बाबू जी, रोटी लाऊँ।

डा० वर्मा : (चीख कर) तुम्हें किसने आवाज दी है। बैठ जाकर। जब जरूरत होगी आवाज दी जायगी। (पत्नी से, स्वर को संयत करके) और वह इस तरह कि डाक्टर कपूर से मैंने कहा है—तुम्हारे रोगियों में से जिन्हें दाँतों का कष्ट हो। उनसे तुम मेरे नाम की सिफारिश कर दो।

श्रीमती वर्मा . मैं कहती हूँ (फिर हँसती है।) यही आपकी वह स्कीम थी जिसके लिए इतनी भूमिका बाँधी गयी? (फिर हँसती है।) राम राम! मैं हँसते-हँसते मर जाऊँगी। भला कपूर को क्या पड़ी है कि वह आपके यहाँ रोगी भेजता फिरे।

डा० वर्मा (खाना छोड़ कर तनिक कटुता के साथ) तुम सुनती तो कुछ हो नहीं . . मैंने उसके साथ कमीशन तय किया है।

श्रीमती वर्मा . (तनिक गम्भीर होकर, जैसे समझने का प्रयास करके) कमीशन!

डा० वर्मा . हाँ कमीशन! २५ प्रतिशत। जिन रोगियों से वह मेरी सिफारिश करेगा, उनसे मैं जो फीस लूँगा, उसका २५ प्रतिशत डाक्टर कपूर को भेज दूँगा।

श्रीमती वर्मा (चुप)

डा० वर्मा : (तनिक उल्लास से) और कौन सा मैं वह अपनी जेब से दूँगा, अरे इतनी ही अधिक मैं उनसे फीस चार्ज कर लूँगा, भला मैं अपनी फीस छोड़ सकता हूँ?

श्रीमती वर्मा . (चुप)

डा० वर्मा (उठ कर) और फिर देखो, कमीशन तो मुझे केवल एक बार ही देना पड़ेगा, पर रोगी तो वह मेरा हो गया, फिर यदि वह

दस बार आये तो कोई दस बार थोड़े ही मैं कमीशन दूँगा। बस पहली बार जो दे दिया सो दे दिया, और फिर एक रोगी का काम यदि उसकी इच्छा के अनुसार हो जाय, तो समझो दस रोगी अपने हो गये। जाने कितनों से फिर वह मेरे नाम की सिफारिश करे और फिर उन सब पर भी कमीशन देने की कोई आवश्यकता नहीं।

[जैसे दुर्ग सर करके बैठ जाते है। पत्नी कुछ क्षण तक जैसे प्रभावित खड़ी रहती है फिर]

श्रीमती वर्मा : हाँ, यह स्कीम आपकी अच्छी है।

डा० वर्मा पर एक ही कठिनाई है।

श्रीमती वर्मा : कठिनाई ?

डा० वर्मा . बात यह है कि कपूर ने साथ-साथ ऐनकों का काम भी आरम्भ कर दिया है और वह मुझसे इस बात की आशा रखता है कि मैं भी उसे कोई आँखो का रोगी भेजूँ।

श्रीमती वर्मा . (चुप)

डा० वर्मा : वह भी मुझे २५ प्रतिशत कमीशन देगा।

श्रीमती वर्मा : यह तो ठीक है। इस परस्पर समझौते का दोनों को दोहरा लाभ होगा।

डा० वर्मा : (जैसे विवशता के साथ) दोहरा लाभ तो होगा, पर अभी सीजन* शुरू नहीं हुआ। इन दिनों मेरे यहाँ रोगी वैसे ही कम आते हैं। और फिर यदि यही हाल रहा तो हो सकता है कि उनमें आँखो का मरीज़ एक वर्ष तक न आये।

[श्रीमती वर्मा कुर्सी से पीठ लगा लेती है, फिर चुपचाप स्वेटर बुनने लगती है। डाक्टर वर्मा चुपचाप खाना खाने लगते हैं।]

*सीज़न = काम का मौसिम।

डा० वर्मा : (एक-दो ग्रास खाकर) और फिर यदि मैं कोई रोगी उसे न भेज सका तो कपूर को शायद याद भी न रहे। आदमी तो वह नया ही है और योग्य कभी वह था नहीं, पर पैसे वाला है, अकड़ उसकी किसी से कम नहीं।

(श्रीमती वर्मा चुपचाप स्वेटर बुनती है।)

डा० वर्मा : अब यदि तुम कुछ सहायता करो तो यह मुश्किल आसान हो जाये। मैं चाहता हूँ कि उसकी ओर से रोगी जल्दी आने लगें। यदि उधर से कुछ सहारा मिले तो दूसरे डाक्टरों से भी बात करूँ?

श्रीमती वर्मा : (जिसके चेहरे का रङ्ग वापस आ जाता है।) मैं सहायता करूँ?

डा० वर्मा : मैं चाहता हूँ कि कपूर के यहाँ योंही दो-चार आदमी भेज दूँ, जो ऐसे ही अपनी आँखों के बारे में उससे परामर्श करें, चिकित्सा वे चाहे उससे न करायें, लाभ इसका यह होगा, कि कपूर को मेरा भी ख्याल रहेगा, यदि उसने दो-चार आदमी भी भेज दिये तो महीने का खर्च निकल जायगा।

श्रीमती वर्मा : तो इनमें मैं क्या कर सकती हूँ।

डा० वर्मा : बात यह है कि पहले पहल मैं एकदम किसी दूसरे आदमी को कैसे भेज सकता हूँ। अपना आदमी हो तो उसे यह सब बात समझायी जा सकती है। इसके बाद तो कुछ दिनों तक मैं कोई न कोई आदमी तैयार कर लूँगा। वह बाबू रामलाल ही ऐनक लगवाना चाहते थे, मुझसे पूछ भी रहे थे, न हुआ तो उनसे ही कपूर के यहाँ जाने को कह दूँगा।

श्रीमती वर्मा : हाँ अपने आदमी के सिवा किसी से यह सब कैसे कहा जा सकता है?

डा० वर्मा . (नौकर को आवाज़ देते हैं) ओ मुड़्!

(मुँड़् आता है ।)

डा० वर्मा : एक-दो गर्म फुल्के ला और (तश्तरी उसकी ओर सरकाते हैं।) यह तरकारी भी गर्म कर ला (पत्नी से) इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम कुछ सहायता करो ।

श्रीमती वर्मा मैं जाऊँ ?

(हँसती है।)

डा० वर्मा · नहीं तुम ज़रा परतूल चन्द से कहो ।

श्रीमती वर्मा : (उठकर और कानों पर हाथ रखे हुए कुछ कदम जाकर) न जी न, मेरा भाई ही इस काम के लिए रह गया ।

डा० वर्मा : (उठकर उसके पीछे जाते हुए) तो यह कोई बुरा काम तो नहीं ! कोई जोखम का काम तो नहीं । बस उसे ज़रा जाना है और कहना है कि मेरी आँखों में कुछ कष्ट है, पढ़ने में दिक्कत होती है । जो औषधि वह दे, ले आये, या आँखों का निरीक्षण कराने की फीस पूछ कर चला आये । इसके बाद जाने की कोई आवश्यकता नहीं । मैं तो.........

श्रीमती वर्मा : (कानों पर हाथ रखकर) न बाबा, किसी और को तैयार कर लो ।

[नौकर सब्ज़ी की कटोरी और फुल्के ले आता है । डा० वर्मा मुँह फुलाये हुए जाकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं और अपना समस्त क्रोध रोटी पर उतारने लगते हैं । दो ग्रास जल्दी-जल्दी खाने के बाद नौकर को आवाज़ देते हैं ।]

: ओ मुड़्, ओ मुड़्!

(मुंडू दरवाज़े से झाँकता है।)

डा० वर्मा : यह गर्म करके लाया है! बदमाश, पाजी ले जा इसे उठा कर!

[नौकर डरता डरता सब्ज़ी की तश्तरी उठा कर ले जता है, डाक्टर वर्मा अचार ही से खाना खाने लगते हैं।

कुछ क्षण के लिए ख़ामोशी

जिसमें डाक्टर वर्मा पूर्ववत् जल्दी-जल्दी खाना खाये जाते हैं और श्रीमती वर्मा जल्दी-जल्दी सलाइयाँ चढ़ाये जाती हैं, फिर उनके पास आकर चुपचाप खड़ी हो जाती है, मुंडू फिर सब्ज़ी गर्म करके ले आता है।]

श्रीमती वर्मा : (जैसे अपने आपसे) मैं कहती हूँ, परतूल के बदले किसी दूसरे को नहीं भेजा जा सकता?

[डा० वर्मा पानी का गिलास मुँह से लगा लेते हैं और गट-गट पानी पीने लगते हैं।]

श्रीमती वर्मा : (उसी स्वर में) और कुछ नहीं, अभी लड़का ही तो है, मुझको उससे सदा भय रहता है, कहीं कुछ हँसी की ही बात कर दे और तुम्हारे वे डाक्टर कपूर बिगड़ जायँ।

[डा० वर्मा गिलास रख देते हैं और बिना उत्तर दिये, सिर नीचा किये खाना खाते हैं।]

श्रीमती वर्मा : अच्छा मैं उससे पूछती हूँ।

(नौकर को आवाज़ देती है।)

वे मुंडू!

(नौकर दरवाज़े से झाँकता है।)

: जा तो ज़रा, नीचे परतूल पढ़ रहा है, उसे बुला ला।

[मुंह चला जाता है। कुछ क्षण कमरे मे मौन छाया रहता है। जिसमें डाक्टर साहब धीरे-धीरे खाना खाते हैं और श्रीमती वर्मा आहिस्ते-आहिस्ते स्वेटर बुनती है।

कुछ क्षण बाद सीढ़ियों में चप्पल की फट-फट सुनायी देती है और दूसरे क्षण परतूलचन्द पाँवों में चप्पल, कमर में लकीरदार नाइट सूट का पायजामा, गले में खुले कालर की धारीदार क़मीज़ और उस पर एक गहरे भूरे रंग की लोई का फेटा मारे प्रवेश करता है।

आकर मेज़ के पास खड़ा हो जाता है।]

परतूल : कहिए जीजा जी !

(जीजा जी चुपचाप खाना खाये जाते है।)

श्रीमती वर्मा : बात यह है परतूल कि तुम्हारे जीजा जी डा० कपूर को अपनी सहायता के लिए कमीशन देंगे।

(डा० वर्मा ज़ोर से थाली में चम्मच फेंकते हैं।)

परतूल सहायता के लिए कमीशन देंगे . डाक्टर कपूर को, . जीजा जी . ?

श्रीमती वर्मा : बात यह है कि .....

डा० वर्मा : (क्रोध से) बकवास ' (उठकर) यह बात है परतूल कि सरक्यूलर रोड पर जो नये डाक्टर आये हैं न, कपूर आई स्पेशेलिस्ट,* उनसे मैंने समझौता किया है कि वे मुझे दाँतों के रोगी भेजा करें और मैं उन्हें आँखों के मरीज भेजा करूँगा। उन रोगियो से हम जो फीस लेंगे, उसमें से २५ प्रतिशत एक दूसरे को कमीशन

* आँखों के विशेषज्ञ।

दे दिया करेंगे। आपस का यह समझौता हममें तय हुआ है। इससे हम दोनों का दोहरा लाभ है।

परतूल . हाँ यह खूब है।

श्रीमती वर्मा · खूब तो है पर तुम इनकी कुछ सहायता करो तब न।

परतूल मैं सहायता करूँ?

डा० वर्मा भाई, तुम कल उनके यहाँ चले जाना, कहना जब मैं पढ़ता हूँ, तो मेरी आँखे दुखने लगती हैं, मस्तक में पीड़ा होने लगती है, देखिए कही मायोपिया (*myopia*) तो नहीं हो गया।

परतूल मायोपिया ! मैं तो बीस के बदले तीस फुट से चार्ट की अन्तिम पक्ति पढ सकता हूँ।

डा० वर्मा तुम भी बस बह हो अरे भाई, कोई सचमुच ऐनक थोड़े ही लगवानी है। बात यह है कि तुम्हें कपूर ने कभी देखा नहीं और तुम्हें यह बताने की आवश्यकता भी नही कि तुम मेरे रिश्तेदार हो। तुम कहना कि मैं उनका पेशेंट हूँ और उन्होंने आपका नाम बताया है। एक कार्ड तुम मुझसे ले जाना, उस पर मै अपना हस्ताक्षर कर दूँगा। कार्ड उसे दे देना और अपनी तकलीफ कुछ भी, हाँ कुछ भी बता देना। दवाई डाले तो डलवा लेना। ऐनक लगवाने को कहे तो निरीक्षण की फीस पूछ कर चले आना। वह समझेगा कि मुझे उसका ख्याल है और वह भी शीघ्र ही कोई न कोई दाँतों का पेशेंट भेज देगा।

परतूल · नहीं-नहीं जीजा जी, यह काम मुझसे न होगा।

[डा० वर्मा पत्नी की ओर ऐसी नजरों में देखते हैं, कि देख लिये, तुम्हारे भाई भी और फिर जाकर रोटी पर जी का बुखार निकालना शुरू कर देते हैं।]

परतूल . नहीं जी, मुझसे यह फ्रॉड * (*fraud*) नहीं हो सकता।

डा० वर्मा (श्वास तोडते हुए मुँह फुला कर) फ्रॉड!

श्रीमती वर्मा . (शिकायत के स्वर में) देखो परतूल, अपने जीजा जी का इतना काम भी तुमसे नहीं हो सकता।

(आर्द्र-नयनों से उसकी ओर देखती है।)

परतूल देखो बहन.......

श्रीमती वर्मा . जाओ हटो, इतना काम भी नहीं कर सकते!

(मुँह फेरकर जल्दी-जल्दी स्वेटर बुनती है।)

परतूल (तनिक समीप आकर धरती में दृष्टि जमाये) मैं कहता हूँ, मैं चला तो जाऊंगा पर मुझसे चुप न बैठा रहा जा सकेगा। यदि उसने निरीक्षण आरम्भ कर दिया.. ..

डा० वर्मा : कर दिया (उठकर) तो फिर क्या हो गया, क्या हो गया फिर! तुम चुपके से निरीक्षण करवा लेना। जो दवाई वह डाले डाल लेने देना। यदि टेस्ट † भी करवाने को कहे, तो मैं कहता हूँ टेस्ट भी करवा लेना। रुपये मैं दे दूँगा। अरे जो रुपये वह टेस्ट के लेगा, उनके २५ प्रतिशत तो हमारे घर में ही आ जायेंगे। और यदि दो पेशंट भी उसने भेज दिये तो सबकी कसर निकाल लूँगा। बस ज़रा कुछ क्षण चुप बैठे रहना।

श्रीमती वर्मा : हाँ जो काम करना होता है, करना ही होता है।

परतूल ' अच्छा-अच्छा तो मैं कल चला जाऊँगा, सुबह कालेज जाने से पहले।

(चप्पल फटफटाता चला जाता है।)

* धोखा। † टेस्ट (*test*) निरीक्षण।

डा० वर्मा : (अत्यधिक प्रसन्नता से) मैं कहता हूँ शीला, यह स्कीम यदि चल निकली तो मैं नगर भर के सब डाक्टरों से कमीशन तय कर लूँगा और फिर इस मकान या दुकान के किराये की बिसात ही क्या है? कितने डाक्टर हैं लाहौर शहर में?—देखो कल ही मैं डा० बृजलाल से बात करूँगा।

(नौकर को आवाज देते हैं।)

ओ मुड्डू, ओ मुड्डू!

(मुड्डू दरवाजे से झाँकता है।)

डा० वर्मा : यह सब गर्म कर ला, सब ठंडा हो गया।

श्रीमती वर्मा : यह मुआ क्या गर्म करेगा, मैं जाकर ठीक तरह गर्म करके लाती हूँ।

(स्वेटर हाथ ही में लिये चली जाती है।)

पर्दा

तीसरा दृश्य

डाक्टर वर्मा की सर्जरी।

समय

दूसरे दिन ९ बजे सुबह।

[सब कुछ वैसे ही है जैसे पहले दृश्य में। बायीं ओर के एक कौच पर एक रोगी बैठा डाक्टर वर्मा की प्रतीक्षा कर रहा है। रंग-रूप से देहाती मालूम होता है।

छोटे मेज से हिन्दी का एक समाचार-पत्र उठा कर पढ़ता है और फिर उसे रखकर अंग्रेजी के समाचार-पत्र की तस्वीरें देखता है।

कुछ क्षण बाद सर्जरी से डाक्टर वर्मा प्रवेश करते हैं।]

रोगी (उठकर थथलाती आवाज़ में) नमस्कार डाक्टर साहब!

डा० वर्मा नमस्कार! कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

(रोगी जेब से एक लिफाफ़ा निकाल कर देता है।)

रोगी मुझे डाक्टर कपूर ने भेजा है।

[डा० वर्मा लिफाफ़ा खोल कर पढ़ते हैं, पढ़ते-पढ़ते उनके मुख पर उल्लास की रेखा दौड़ जाती है।]

डा० वर्मा : अच्छा तो आप दूर से डाक्टर कपूर के रिश्तेदार होते हैं।

रोगी : जी, जी !

डा० वर्मा : बैठिए, बैठिए !

(रोगी सकुचाता हुआ बैठ जाता है।)

डा० वर्मा : (स्वयं भी बैठकर) डा० कपूर की मुझ पर विशेष कृपा है। मैं तो एक तरह से उनका फेमेली डेन्टिस्ट, मेरा मतलब कि घर का दन्दानसाज़ हूँ। कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि उनके कुटुम्ब में किसी को दांतों का कष्ट हुआ हो और उन्होंने मुझे सेवा का अवसर न दिया हो। (एक बार फिर पत्र उठाकर पढ़ते हैं।) हूँ, तो आप राहो से आये हैं ?

रोगी : जी !

डा० वर्मा : वहाँ आप कहीं नौकर हैं ?

रोगी : जी नहीं, नौकर तो मै किसी जगह नहीं !

(मुस्कराता है।)

डा० वर्मा : तो काम, मेरा मतलब है कि आप .....

(हँसता है।)

रोगी : काम आपकी कृपा से अच्छा है, उधर देहात में साहूकारा है और कस्बे में एक दुकान भी है।

डा० वर्मा : (खिसियानी हँसी के साथ) तो फिर आपको काम की क्या आवश्यकता है, जिसके घर में (हँसता है।) मेरा मतलब है कि .. .खैर तो आप लाहौर योंही सैर के लिए आये हैं।

रोगी : जी, सैर ही समझ लीजिए, कुछ काम भी था, फिर मिलना जुलना भी हो गया और इस बहाने लाहौर भी देख लिया, आजकल नुमाइश हो रही है, उसका भी..

डा० वर्मा (हँसते हुए) राहों के दो आदमी मुझसे पूरा सेट लगवा चुके हैं। आज तक वे उनकी प्रशंसा करते हैं और दाँतों की चिकित्सा तो वहाँ के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने मुझ से करायी है। पंडित रामप्रसाद को जंजीवाटिस (*Gingivitis*) हो गया था, कई डाक्टरों के दरवाज़ों की खाक छानने के बाद मेरे यहाँ आये, बस वे और उनका सारा कुटुम्ब मेरा पेशेंट हो गया।

रोगी · कौन रामप्रसाद ?

डा० वर्मा · वे. . . . शायद आप उन्हें नहीं जानते. . . खैर तो आपके दाँतों में क्या कष्ट है ?

रोगी · मेरे दाँतों से खून आता है।

डा० वर्मा : आपने पहले भी किसी को दिखाया ?

रोगी : हम डाक्टर साहब, यह बीमारियाँ आदि क्या जानें ? हम ठहरे देहाती आदमी। हमारे उधर गाँव में यदि किसी के दाँत को कोई कष्ट हो तो वह जाकर दीनानाथ से निकलवा लेता है।

डा० वर्मा · दीनानाथ !. . . .सर्जन है कोई ?

रोगी · नहीं जी, वह तो नाई है !

डा० वर्मा : (ठहाका मारते हैं) ! आप लोग भी क्या खूब हैं। किसी ऐसे-वैसे आदमी से कभी भी दाँत न निकलवाना चाहिए, एक तो कष्ट बहुत होता है, दूसरे डाढ टूट जाये तो वह पीड़ा होती है कि भगवान ही मालिक है और नासूर हो जाये तो जान जोखम में पड़ जाती है।

रोगी . (हकलाते हुए) आपके . . . डाक्टर साहब. . . . आपके यहाँ तो कोई कष्ट नहीं होता ?

डा० वर्मा : बिलकुल नहीं, सुई बराबर भी नहीं।

रोगी : तो देखिए डाक्टर साहब (उठकर मुँह खोलता है।) मैंने इधर, यह डाढ़ दीनानाथ से निकलवायी थी, पन्द्रह दिन पीड़ा और ज्वर से जो पड़ा रहा सो तो पड़ा रहा, पर अभी तक शायद इसकी कोई किर्च शेष रह गयी है। कभी-कभी वह टीस उठती है कि प्राण ओठों पर आ जाते हैं।

[मुँह खोलकर खड़ा हो जाता है। बलचरन प्रवेश करता है, रोगी पूर्ववत मुँह खोले खड़ा है।]

बलचरन औज़ार मैंने सब साफ करके ट्रे में रख दिये हैं।

डा० वर्मा . क्या उन्हें उबाल लिया ?

(दोषी की भाँति बलचरन चुप रहता है।)

डा० वर्मा · (क्रोध से) बिना उबाले ही क्या रख दिया उनको ?

(बलचरन फिर भी चुप है)

· तो फिर खड़ा क्या देख रहा है। कितनी बार कहा कि एक बार जब किसी की डाढ़ निकालूँ तो औजारों को उबाल लिया कर।

(बलचरन चला जाता है।)

डा० वर्मा · *idiot*❀ (रोगी से) आप कुछ देर के लिए अभी बैठें। बात यह है कि एक आदमी के मुँह में जो औज़ार जाये उसे वैसे ही दूसरे के मुँह में न लगाना चाहिए। मैंने अभी एक मरीज की दो डाढ़ें निकाली हैं, और इस मूर्ख ने अभी औज़ारों को उबाला तक नहीं। दूसरे डाक्टर इस बात का ख्याल नहीं रखते, पर मैं इस मामले में अत्यन्त सावधान रहता हूँ।

रोगी : (मुँह बन्द करके बैठता हुआ) क्यों नहीं, क्यों नहीं, आप योग्य डाक्टर जो हुए। कपूर साहब ने आपकी प्रशंसा की है। मैं तो

❀idiot = मूर्ख।

आता ही न था, उन्होंने दाँत देखे तो कहने लगे, इनका शीघ्र इलाज करा लो, नहीं तो दाँतों ही से हाथ धोने पड़ेंगे और दाँतों के बाद आँखों की बारी आयगी।

डा० वर्मा : आँखों ही की बात नहीं, मैं कहता हूँ दाँतों की खराबी के कारण कब्ज, दाँतों की खराबी के कारण पेचिश, दाँतों की खराबी के कारण अतिसार, दाँतों की खराबी के कारण दिल की धड़कन, जोड़ों का दर्द, गंठिया और (आवाज़ भारी करके) मृत्यु तक हो जाती है। (रोगी बैठा-बैठा काँप जाता है।) ये जितने हड्डियों के ढाँचे, चुँधी आँखों और पिचके गालों वाले लोग आपको दिखायी देते हैं ये दाँतों ही के मरीज़ तो हैं। वह देखिए ..

(मॉटो दिखाते हैं।)

"मुँह शरीर का दरवाजा है उसकी रक्षा करो।"
"खराब दाँत कब्र खोदने वाले फावड़े हैं।"

रोगी : (हकलाते हुए) यदि डाक्टर साहब कोई दाँत निकलवाना पड़ा तो कोई कष्ट.. ...

डा० वर्मा : (घूमकर) मैं कहता हूँ जरा भी नहीं। वह आपके पास ही नवाशहर के लाला घनश्याम दास हेड क्लर्क हैं मैंने उनके पिता, उनकी माता, उनके दादा, उनके कुटुम्ब के दूसरे व्यक्तियों के दाँत निकाले, पर किसी को अणु-मात्र भी कष्ट महसूस नहीं हुआ।

रोगी : कौन घनश्याम दास... ..

डा० वर्मा : (बेपरवाही से) वे अब वहाँ से बदल गये हैं, आप उन्हें नहीं जानते।

(घंटी बजती है।)

डा० वर्मा . आ जाइए (रोगी से) हाँ तो मैं कह रहा था .....

(डा० बृजलाल प्रवेश करते हैं।)

डा० वर्मा (रोगी से) ये मेरे एक और मरीज आये हैं, आप जरा सर्जरी में जाकर पधारिए, मैं अभी दो मिनट में आता हूँ (नौकर को आवाज देते है।) बलचरन, बलचरन,!

(बलचरन सर्जरी से आता है।)

डा० वर्मा : इनको जरा सर्जरी में ले जाकर बैठाओ, मै अभी आता हूँ।

(नौकर और रोगी जाते हैं।)

डा० बृजलाल : मै तुम्हारा पेशेंट हूँ वर्मा!

डा० वर्मा : अरे भई वह तो है!

(दोनों हँसते हैं।)

. तुम ठीक अवसर पर आये बृज, मैं तुम्हारी ओर जाने वाला ही था।

डा० बृजलाल अरे हटो, तुम जाने वाले थे।

डा० वर्मा . नहीं सच! कहो काम-काज कैसा है आजकल?

डा० बृजलाल : मन्दी है बस! हम कर ही क्या सकते हैं, लोगो के रक्त-ही नहीं, उसका निरीक्षण क्या करवायेगे?

डा० वर्मा : इधर भी यही हाल है, रोगी तब तक डेन्टिस्ट के यहाँ जाने का कष्ट नहीं करता जब तक कि गलते-गलते डाढ मसूड़ों के अन्दर न चली जाये और इन्जेक्शनों पर फीस से अधिक मूल्य की दवाई न लग जाये!

डा० बृजलाल पर मैं सोचता हूँ कि आखिर इसका इलाज क्या किया जाये? वास्तव में देश की सम्पन्नता के साथ ही हमारी सम्पन्नता लगी हुई है, यदि देश ही कगाल होगा तो . ..

डा० वर्मा : पर मैं कहता हूँ, यदि हम सब डाक्टर एक दूसरे से सहयोग करें तो यह कठिनाई बहुत हद तक सुगम हो जाये।

डा० बृजलाल : एक दूसरे से सहयोग करें।

डा० वर्मा : आपस का समझौता कर लें।

डा० बृजलाल : आपस का समझौता . .

डा० वर्मा : जैसे देखो मैं दाँत का डाक्टर हूँ दाँतों की चिकित्सा करता हूँ, पर आँख का इलाज तो मैं नहीं करता, नाक और कान का इलाज तो मैं नहीं करता, रक्त का निरीक्षण तो मैं नहीं करता! और यह सर्वथा सम्भव है कि मेरे रोगियों में से किसी को आँख, नाक अथवा कान का कष्ट हो, अथवा किसी को एक्स-रे या रक्त का निरीक्षण कराना हो।

डा० बृजलाल : (दिलचस्पी लेता हुआ) हाँ-हाँ।

डा० वर्मा : अब मै आँख के रोगी को किसी आई-स्पेशेलिस्ट के पास और नाक तथा कान के रोगी को किसी नाक-कान के रोगों में निपुण डाक्टर के पास, जिससे मेरा परस्पर समझौता हो चुका हो, भेज सकता हूँ। और जिस रोगी का रक्त आदि का निरीक्षण कराना हो, उसे भी अपने किसी ऐसे ही मित्र के पास भेज सकता हूँ। और इसी तरह वे अपने रोगियों से, जिन्हें दाँतों का कष्ट हो, मेरे नाम की सिफारिश कर सकते हैं।

डा० बृजलाल : मैं समझा, मैं समझा।

डा० वर्मा : देखो अब तुम एक्स-रे करते हो या रक्त आदि का निरीक्षण पर भाई दाँतों की चिकित्सा तो तुम नहीं करते। डाढ़े तो तुम नहीं निकालते। अब यदि तुम्हारे मरीजों में से किसी को दाँत की तकलीफ हो तो उसे मेरे यहाँ भेज दो, मै उससे जो फीस लूँगा उसका २५ प्रतिशत कमीशन तुम्हारे यहाँ भेज दूँगा।

डा० बृजलाल : यह कमीशन......

डा० वर्मा मै कहता हूँ, इसमें बुरा क्या है ? यह तो आपस का सहयोग है। मैं जो मरीज तुम्हारे यहाँ भेजूँ, उनसे तुम जो लो उसका २५ प्रतिशत मुझे भेज देना। आँख के रोगियों के सम्बन्ध में ऐसा ही एक समझौता मैने कल डाक्टर कपूर से किया था और यह जो रोगी अभी बैठा था, यह उसने ही भेजा है। मै भी आँखो का एक पेशेंट उसके यहाँ भेज चुका हूँ।

परतूल : (बाहर से अत्यन्त क्रोध, दुख और व्यंग के स्वर मे) और उस की जो दुर्दशा हुई है वह भी देख लीजिए ?

[एक व्यक्ति के सहारे अन्दर प्रवेश करता है। आँखों पर पट्टियाँ बंधी हैं।]

डा० वर्मा . (चोक कर भय से) परतूल !

परतूल . (जैसे असह्य पीड़ा को रोक कर) कुछ नही . . . शायद एक आँख जाती रही ह।

डा० वर्मा . परतूल......

परतूल (थके हुए स्वर मे कराह कर) मैने बिलकुल वैसे ही किया जैसे आपने कहा था। आपके कहने के अनुसार ही मैने अपनी बीमारी बतला दी। वे निरीक्षण करने लगे तो मै चुप रहा। देख कर कपूर साहब ने कहा—जीरो आफथैलमिया (*Zero of thalmia*) हो गया है, मै . . . .

डा० वर्मा · (गर्ज कर) जीरो आफथैलमिया !

परतूल कहने लगे, बड़ा भयानक रोग है

डा० वर्मा : (और भी गर्ज कर) भयानक रोग, जीरो...आफ...थैल-मिया भयानक रोग !

परतूल · (दोनों हाथों से मस्तक को पकड़कर पीड़ा को रोकते हुए) कहने लगे, सात दिन तक दवाई डलवाओ, फिर ऐनक लगा देंगे।

डा० वर्मा : पर जीरो आफथेलमिया तो कोई बीमारी ही नहीं होती, मात्र ..

परतूल : (जैसे निढाल होकर) और दवाई की पहली किश्त उन्होने आँख में डाल दी, और जैसे उसके साथ ही दिमाग तक की नसें भी जल उठीं ।

(धम से कौच पर बैठ जाता है ।)

डा० वर्मा : (चीख कर) पाजी, बदमाश, सुअर । उसे डाक्टर बनाया किसने ? दस वर्ष तो कालेज में धक्के खाता रहा । उसे प्रेक्टिस करने का अधिकार क्या है ? जीरो आफथेलमिया तो मात्र......

परतूल : मैं तो बेहोश हो गया था (कराहता है) उसने पट्टी बाँध दी और तसल्ली दी, पर मेरी आँख तो ..

डा० वर्मा : (और भी चीख कर) मै उसे नगर से निकलवा दूँगा, मैं उसे बदनाम कर दूँगा, मै......

परतूल : पर मेरी आँख तो........

डा० वर्मा : (अत्यन्त क्रोध से) मैं उस पर मामला चला दूँगा, हरजाने का दावा कर दूँगा (रुक कर) पर ठहरो, उसका एक रिश्तेदार उधर सर्जरी में बैठा है......

परतूल : (जैसे रोकर) पर मेरी आँख तो.. ...

डा० वर्मा . (पागलों की भाँति) मैं उसके सब दाँत उखाड़ दूँगा, उसके मसूड़ों में नासूर कर दूँगा ।

(दीवानों की भाँति सर्जरी में चला जाता है ।)

परतूल : (निढाल होकर) पर मेरी आँख तो बस निकली ही जा रही है ।

[सिर को बाजुओं में लेकर छोटी मेज़ पर झुक जाता है । डा० बृजलाल भौंचक्के से देखते रह जाते हैं ।]

पर्दा

कर्मवीर १६३६